‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

दीक्षा–प्रकाश

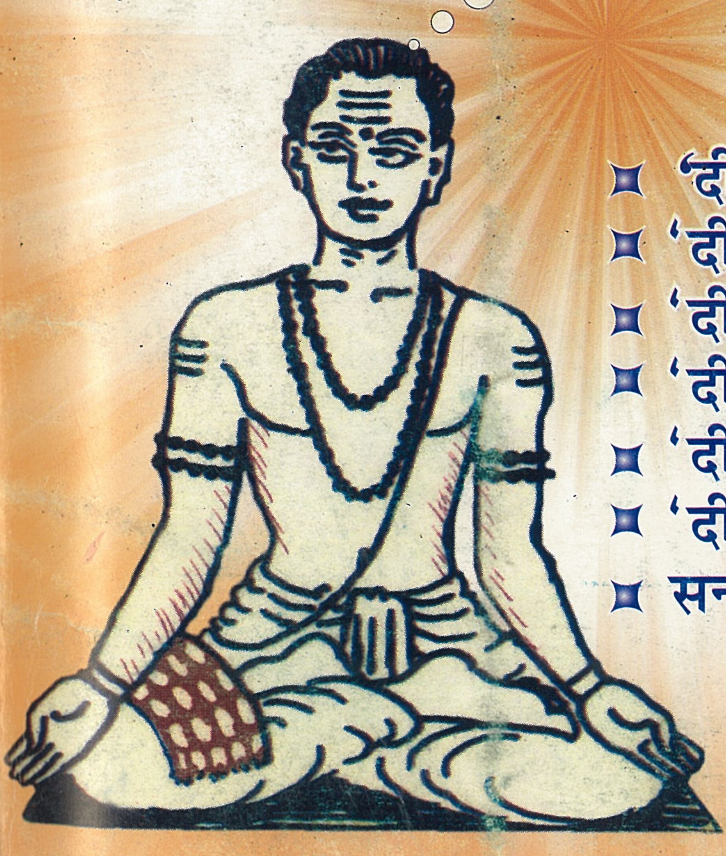

- ‘दीक्षा’ का अर्थ
- ‘दीक्षा’ के प्रकार
- ‘दीक्षा’ की आवश्यकता
- ‘दीक्षा’-रहस्य
- ‘दीक्षा’-विवेचना
- ‘दीक्षा’-विधि
- सनातनी ‘दीक्षा’-क्रम

'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

राष्ट्र-भाषा हिन्दी में 'दीक्षा', 'दीक्षा के भेद' एवं 'दीक्षा-विधि' जैसे उत्कृष्ट निबन्धों को लिखकर सर्व-साधारण को 'दीक्षा' का अर्थ, माहात्म्य एवं विधि बतानेवाले 'चण्डी' के यशस्वी लेखक/साधक पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री।
'राष्ट्र-गुरु' पं० पू० स्वामी जी महाराज ने आपको 'राष्ट्र-रक्षा-अनुष्ठान' हेतु विशेष रूप से आमन्त्रित किया था।

पर्व-पत्र

श्रावण कृष्णा अष्टमी

(मङ्गलवार, १९ जुलाई २००६)

- भौम व्रत।
- गौरी-पूजा, दुर्गा-यात्रा, हनुमत् दर्शन।

श्रावण अमावास्या

(मङ्गलवार, २५ जुलाई २००६)

- भौमवती अमावास्या।
- गौरी-पूजा, दुर्गा-यात्रा, हनुमत् दर्शन।

श्रावण शुक्ला अष्टमी

(बुधवार, २ अगस्त २००६)

- बुधाष्टमी

श्रावण पूर्णिमा

(बुधवार, ९ अगस्त २००६)

- रक्षा-बन्धन

भाद्रपद कृष्णा द्वितीया

(शुक्रवार, ११ अगस्त २००६)

- विन्ध्याचली भीम-चण्डी देवी जयन्ती

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी

(सोमवार, १४ अगस्त २००६)

- हल-षष्ठी (ललही छठ)

भाद्रपद कृष्णा अष्टमी

(बुधवार, १६ अगस्त २००६)

- श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
- बुधाष्टमी

भाद्रपद अमावास्या

(बुधवार, २३ अगस्त २००६)

- कुश-ग्रहण अमावास्या
- 'ॐ हूँ फट्' मन्त्र से कुश-ग्रहण

'कील-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ६५ अङ्क ३-४

इस अङ्क में-

- पर्व-पत्र १
- गुप्तावतार बाबा श्री की जयन्ती २
- बाबा श्री उपदेशामृत ३

विशेष प्रस्तुति

- दीक्षा-प्रकाश १-८८

सूचना

- 'चण्डी' के ६५वें वर्ष का तीसरा विशेषाङ्क 'श्रीबगला-सहस्र-नाम-साधना' होगा, जो सभी पाठकों के पास १० अगस्त, २००६ को ४०.०० की वी.पी. द्वारा भेजा जाएगा।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

व्यवस्थापक श्रीचण्डी-धाम,

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

दूर-भाष : (०५३२)-२५०२७८३

❀❀❀

मानद सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A., Bungalow Road, Opp. Hansraj
College Back Gate, Delhi-110007
Ph.:- 23856391, 41530902

❀❀❀

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

यह प्रति अनुदान रु० ३५/-

'मन'

मानवीय देह में 'बुद्धि'–रूप पारदर्शक यन्त्र द्वारा उतरता हुआ, चित्–काश–युक्त तथा सूक्ष्म तत्त्व–भाव निर्मित 'मन'–एक विचित्र रहस्य–मय वस्तु है।

योगानुभवी महा–व्यक्ति इस दिव्य पदार्थ 'मन' को स्थूल और सूक्ष्म जीवन का ''सन्धि–विन्दु'' कहते हैं। कोई 'मन' को ''जीवनांग तत्त्व'' के नाम से जानते हैं और कई 'मन' का नाम ''विचार-ग्रन्थि'' बताते हैं।

'मन'–बाह्य दर्शन तथा व्यक्तित्व का मूल हेतु होने के कारण जीवन में प्रत्येक अलौकिक अथवा अभूतपूर्व शक्ति को उत्पन्न करनेवाला प्रधान यन्त्र है।

व्यक्ति के लिए दिव्य गुण–मय, उच्च सत्त्व–भाव में या तमो–भाव में चढ़ने–उतरने के लिए 'मन' एक रहस्य–मय सीढ़ी है।

'नाद'

'नाद'–सूक्ष्म शब्द है। स्थूल में सुनाई देनेवाले शब्द को हम लोग 'शब्द' कहते हैं परन्तु जो शब्द सूक्ष्म हैं, उनको 'वैखरी', 'नाद' कहते हैं।

●●●

जिस शब्द की गति नापी जा सके, उसे शब्द कहते हैं। जो शब्द सूक्ष्म है और जिसकी गति नापी न जा सके , वह वैखरी है, उसको 'नाद' या 'अनहद' कहते हैं।

●●●

'नाद' का भान मात्र 'मन' को ही होता है। 'नाद' से सूक्ष्म 'विन्दु' है और विन्दु से सूक्ष्म 'वीज' है। इससे भी सूक्ष्म 'गति' है। गति 'प्रकृति' का स्वरूप है और उसके परे 'चित्' है।

'ॐ'-कार

ॐ-कार का उच्चारण करने में 'अ'-कार से मन का उत्थान होता है, 'उ'-कार मन को गति देता है तथा 'म'-कार में मन लय होता है।

●●●

इस प्रकार ॐ (अ+उ+ँ) में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनों दैवत हैं और रज, सत् और तम तीनों गुण सम्मिलित हैं। इसमें उत्पत्ति, स्थिति तथा लय तीनों क्रियाएँ हैं।

●●●

ॐ-कार महा–मन्त्र है, तारक मन्त्र है, मन्त्र–राज है। ईश्वर की तीनों क्रियाएँ सम्मिलित होने से यह ईश्वर का नाम है।

●●●

ॐ-कार में सातों स्वर मिले हुए हैं।

'राम' का अर्थ

'राम'–भगवान् रामचन्द्र का संक्षिप्त नाम है, किन्तु 'राम' एक मन्त्र भी है।

'राम' का अर्थ किया जाए, तो इसमें आराम, विराम तथा अभिराम तीनों आ जाते हैं। इसलिए 'राम'–नाम कल्प–वृक्ष के समान सम्पूर्ण आपत्तियों का विनाश करनेवाला तथा लोक–त्रय को आनन्द देनेवाला है। जिस प्रकार ॐ-कार में उत्पत्ति, स्थिति तथा लय–ये तीनों क्रियाएँ हैं, उसी प्रकार 'राम' में भी तीनों क्रियाएँ हैं।

ॐ-कार ढाई अक्षरों से बना है। 'राम'-मन्त्र तीन अक्षरों– र+आ+म=रा+म से बना है।

बाबा श्री उपदेशामृत

'मन्त्र' और 'मन्त्र-साधना'

'मन्त्र' अर्थात् विचार। 'मन्त्र' एक प्रकार का विचार है, जिसके जप या रटन द्वारा मन उन्नत होकर उच्च लक्ष्य पर स्थित होता है। 'मन्त्र' द्वारा साधक अपने उपास्य देव का विचार करता है और उसको याद करता है।

'मन्त्र' के सतत मनन से व्यक्ति-गत मन एवं व्यक्ति की जीवन-शक्ति के सम्पुट में दबकर 'मन्त्र' विस्फुटित होता है। इससे साधक के चिदस्तित्व में विचित्र प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

'मन्त्र-साधना' जीव अर्थात् व्यक्तियों को 'श्रेय'-मार्ग पर ले जानेवाली प्रमुख साधना है। युक्त रीति में 'मन्त्र' का 'जप' व्यक्ति के कल्याण का प्रधान हेतु है। गुरु 'मन्त्र' के उपदेश के द्वारा साधक के सामने उपास्य देव का विचार रखता है और उस विचार का चिन्तन करने से साधक उत्तम मार्ग पर स्थित होता है।

'मन्त्र'-रहस्य

युक्त रीति से 'मन्त्र' का जप व्यक्ति के कल्याण का एक हेतु है। दिव्य गुण-तत्त्व-चिन्तन और सतत मनन से 'मन्त्र' ध्याता को समय पर ध्येय-रूप बना देने में समर्थ होता है।

'मन्त्र' के शब्दों में तत्त्व-दैवत के भाव-सूत्र निहित रहते हैं। इन शब्दों को 'बीज' या 'मन्त्र-बीज' के नाम से पहचानते हैं।

इस तरह दिव्य बीज-युक्त 'मन्त्र' का भाव-मय गुण-तत्त्व के लक्ष्य से चिन्तन करने से साधक कल्याण पाता है। यही 'मन्त्र-रहस्य' है।

वर्तमान काल में 'मन्त्र-जप' करनेवाले बार-बार विफल होते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें मार्ग-युक्त दिशा ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती अथवा वे सत्य रहस्य से अनभिज्ञ होते हैं।

'शब्द' और 'मन'

'मन' और 'शब्द' का आन्तरिक सम्बन्ध है। 'शब्द' उच्च-भाव द्वारा 'मन' में जीवन-शक्ति का संचार करता है। 'शब्द' सम-भाव द्वारा 'मन' में एकाग्रता को पैदा करता है और विषम-भाव द्वारा विकार को पैदा करता है।

'मन्त्र' में शब्दों का उच्च-भाव व समत्व-मय प्रवाह है। इसीलिए उसमें मन को एकाग्र करने या आनन्द देने की शक्ति है।

'मन्त्र' जिन उच्च भावनाओं से युक्त होता है, उन्हीं भावनाओं में 'मन' खिंचता है।

'शब्द'-चित्-शक्ति के आधार से, बुद्धि को धारण कर, मन में जीवन-शक्ति प्रेरित करता है। अतः शब्द में मन की विचित्र गति को स्तम्भित कर रोक देने की शक्ति विद्यमान है।

बाबाश्री की जयन्ती

गुप्तावतार बाबा-श्री योगी, दार्शनिक, तन्त्रज्ञ, मन्त्रज्ञ, तत्त्व-दर्शी, कुलाचारी, परम उदार, नीति-निपुण, दयालु एवं व्यवहार-कुशल महात्मा थे। मुख्यतः वे 'राज-राजेश्वरी महा-त्रिपुर-सुन्दरी' के ऊर्ध्वाम्नायी उपासक थे।

बाबाश्री ने 'चण्डी' एवं 'चण्डी-परिवार' को स्वयं प्रयाग पधारकर अपने मण्डल में उस समय सम्मिलित किया था, जब 'गोपनीयता' के सिद्धान्त के कारण बड़े-बड़े विद्वान् खुलकर 'शाक्त-धर्म' के सिद्धान्तों की पुष्टि करने में संकोच कर रहे थे।

'चण्डी'-पत्रिका के लिए देश के साधकों को उद्बोधित करते हुए बाबाश्री ने स्पष्ट रूप से कहा था कि-''.....वर्ण-मातृका-वीज-निर्मित, बोध-दायिनी विवेकामृत-वर्षिणी, बहु-मत-शास्त्र-मेघ में चमकती विज्ञान-विद्युत् 'चण्डी' को अपनी पथ-दर्शिनी बनावें।.....''

निस्सन्देह यह बाबाश्री जैसे महात्माओं के आशीर्वाद का ही सुफल है कि अनेकानेक कठिनाइयों के होते हुए भी 'चण्डी'-पत्रिका का प्रकाशन पिछले ६४ वर्षों से लगातार हो रहा है और आज भी श्रद्धालु-बन्धु 'चण्डी'-पत्रिका से आवश्यक मार्ग-दर्शन प्राप्त कर रहे हैं।

बाबाश्री की १२२वीं जयन्ती (जन्म-तिथि : श्रावण कृष्णा त्रयोदशी, सं० १९४१ वि०) रविवार, २३ जुलाई २००६ को सम्पन्न होगी। इस अवसर पर हम यहाँ आपके प्रति हार्दिक नमन करते हैं और आपकी ही कृपा से उपलब्ध एक ऐसी दुर्लभ छवि को प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसे देखकर 'चण्डी' के सभी पाठक-बन्धु आनन्दित होंगे-

'तीर्थराज-प्रयाग'-प्रवास की दुर्लभ स्मृतियाँ

'सप्तशती' का रहस्य

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' में सम्पूर्ण विश्व-विज्ञान का निचोड़ है। इसके प्रत्येक श्लोक के चार भेद हैं-

प्रथम स्थूल 'कथा-लक्ष्य' है।

●●●

द्वितीय 'तान्त्रिक लक्ष्य' है। इसमें प्रत्येक श्लोक को एक 'मन्त्र' माना गया है।

●●●

तृतीय 'यौगिक लक्ष्य' है। इसमें 'कुण्डलिनी-उत्थापन' आदि के लिए प्रत्येक श्लोक का 'षट्-दल-चक्र' में जप किया जाता है।

●●●

चतुर्थ 'अन्तर्लक्ष्य' है। इसमें आन्तरिक भाव से सम्बन्धित सांख्य शास्त्र का उपदेश है।

'सप्तशती' का पाठ

'सप्तशती' का पाठ यदि आत्मोन्नति के लक्ष्य से करना हो, तो पाठ समझ कर करना चाहिए। बिना अर्थ जाने पाठ करने से मन पर जो असर होना चाहिए, वह नहीं होता।

'पाठ'—मन को उच्च बनाने के लिए किया जाता है। मन जो कुछ करता है, वह समझेगा ही नहीं, तो मन पर असर नहीं होगा। 'आत्म-कल्याण' के निमित्त पूरा पाठ न करके मात्र सप्तशती के माँ के स्तवन—रात्रि-सूक्त, शक्रादय स्तुति, देवी-सूक्त का पाठ किया जाए, तो भी काम चल जाएगा।

'रात्रि-सूक्त' का पाठ पूरा करना चाहिए। 'शक्रादय स्तुति' का पाठ 'कर-पल्लव-सङ्गीनि, तैरस्मान् रक्ष सर्वतः' तक करना चाहिए।

लोम-विलाम-पाठ

प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ना 'लोम' पाठ है। और अन्त से प्रारम्भ तक पढ़ना 'विलोम' पाठ है।

स्तोत्र या भजन 'लोम' में पढ़ने या गाने से पहले मन पर असर होता है और बाद में उसकी प्रतिक्रिया जागती है। 'लोम' में गाने के बाद यदि वही स्तोत्र 'विलोम' में गाया जाय, तो उसकी प्रतिक्रिया बाहर नहीं होगी अपितु मन में ही होगी। अर्थात् उसका प्रतिफल नहीं जागेगा।

कामना-लक्ष्य से 'लोम-विलाम' दोनों में गाने से प्रतिक्रिया नहीं होगी और कामना सिद्धि नहीं होगी। केवल 'विलोम' में स्तवन करने का कोई अर्थ नहीं है।

'कवच' का पाठ

कामनार्थ उपासना करनेवाले का 'कवच' पढ़ना आवश्यक है। जो केवल आत्मोन्नति के लक्ष्य से उपासना करते हैं, उनको 'कवच' पढ़ने की जरूरत नहीं है। फिर भी उपासक अपने देह का यह या वह भाग उपास्य-देव की किसी-न-किसी शक्ति को अर्पित है, ऐसी भावना रखते हुए 'कवच' का पाठ कर सकते हैं।

श्री दुर्गा सप्तशती की 'शक्रादि-स्तुति' के अन्त में चार श्लोक कहे गए हैं, वे 'कवच' हैं। उनका शब्दार्थ यह होते हुए भी कि "त्रिशूल से और खड्ग से मेरी रक्षा करो।" भाव यह है कि "हे माँ! आप द्वारा धारण की हुई क्षय-कर शक्तियों के कारण हम आपके सम्मुख नहीं हो सकते। अतः आप कृपा कर हमें अपने चरण-कमलों में ले लीजिए।"

वाग्-भव कूट (क-ए-ई-ल-ह्रीं)

'क'

ईश्वर-वाचक शिव-बीज।

'ए'

वाग्-बीज।

'ई'

शक्ति-बीज।

'ल'

भू-बीज।

'ह्रीं'

माया-बीज।

उक्त पाँचों अक्षरों का अर्थ है-

हे ईश्वर! मुझे ऐसी वाणी-शक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं विश्व की उत्पत्ति-कारक माया के दिव्य गुण गा सकूँ।

काम-कूट (ह-स-क-ह-ल-ह्रीं)

'ह'

शिव-बीज।

'स'

शक्ति-बीज।

'क'

काम-बीज।

'ह'

पूर्ण काम-रूप।

'ल'

भू-बीज।

'ह्रीं'

माया-बीज।

उक्त छः अक्षरों का अर्थ है-

हे शिव-शक्ति-रूप ईश्वर! मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण रूप से और विश्व की सम्पूर्ण क्रियाएँ तथा माया किस प्रकार सिद्ध होती हैं, वह मार्ग आप दिखाइए।

शक्ति-कूट (स-क-ल-ह्रीं)

'स'

शक्ति-बीज।

'क'

ईश्वर-वाचक शिव-बीज।

'ल'

दृश्य-वाचक भू-बीज।

'ह्रीं'

माया-बीज।

उक्त चारों अक्षरों का अर्थ है-

हे शक्ति-युक्त ईश्वर! आपकी माया हमें दिव्य विश्व-सृष्टि-रूप से दिखाई दे अर्थात् आपकी शक्ति-मय माया का हमें दर्शन हो।

'मृत्युञ्जय मन्त्र' का अर्थ

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनं, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॐ स्वः भुवर्भूः ॐ सः जूं हौं ॐ।

ॐ- त्रि-गुण, त्रि-दैवत। हौं- शिव-बीज। जूं-जीवन-भाव। सः- शक्ति-भाव। भूर्भुवः स्वः- मुझे त्रिलोक-विषयक ज्ञान हो। त्र्यम्बकं-तीन नेत्रवाले (भूत, वर्तमान और भविष्य देखनेवाले) उन मृत्युञ्जय भगवान् की, जो उत्तम गन्ध अर्थात् जगत् को पोषण और आरोग्य देनेवाले हैं, मैं आराधना करता हूँ। जैसे पेड़ में बँधा हुआ फल अलग होने पर भी अपने रस से अलग नहीं होता, वैसे ही सारा विश्व मृत्यु के बन्धन में बँधा होते हुए भी मैं उसके कष्ट से छूट जाऊँ, जीवन-रूप अमृत से अलग न होऊँ।

'ह्रीं श्रीं क्रीं' का अर्थ

'ह्रीं'

माया की अमोघ शक्ति, जो इस विश्व में भरी है, वह मेरे हृदय में–

●●●

'श्रीं'

श्रेयत्व पैदा करे (और वह श्रेयत्व हमें बहकावे नहीं अपितु)–

●●●

'क्रीं'

सत्‌–क्रिया में व्यय हो।

'गायत्री'-मन्त्र का अर्थ

ॐ–

त्रि–गुण।

भूर्भुवः स्वः–

स्थूल, प्राण, बुद्धि का धारण–भाव।

तत् सवितुः वरेण्यं–

उस तेजो–मय सूर्य के आनन्द से भरे हुए।

भर्गो देवस्य धीमहि–

अनन्त व्यापक देवता के 'तेज' का मैं ध्यान करता हूँ।

धियो यो नः प्रचोदयात्–

जो मेरी बुद्धियों को प्रेरणा दे।

ऐसे उच्च विचार ध्यान में रखते हुए 'गायत्री'-मन्त्र का जप करने से फल मिलता है।

हरि-मर्कट-मन्त्र का अर्थ

ॐ हरि–मर्कट! मर्कटाय स्वाहा

आत्मोन्नति के लक्ष्य से जो कर्म बाधक होते हैं, उनको 'पाप' की संज्ञा दे सकते हैं।

आत्मोन्नति के विरुद्ध को हरण करनेवाले का नाम 'हरि' अर्थात् विश्वात्मा है।

'मर्कट' अर्थात् बन्दर। जीवों में सबसे ज्यादा चंचल बन्दर है। चांचल्य का मूल **'मन'** है। **'मन'** से ज्यादा चंचल कुछ भी नहीं है। अतः उक्त मन्त्र का अर्थ यह होता है कि–

ॐत्रिगुण के परे जो (हरि) आत्मा है, उसका (मर्कट) मेरे चंचल मन को भान हो और (मर्कटाय) चांचल्य के समुद्र अर्थात् प्रकृति-विश्वात्मा में मेरा मन (स्वाहा) लय हो।

'राधा-कृष्ण' का 'जप'

भगवान् श्रीकृष्ण विश्वात्मा हैं। वे सबके लिए बराबर हैं। दुनिया के किसी भी व्यक्ति को प्रभु को प्राप्त करने का अधिकार है।

राधिका प्रभु को प्राप्त करना चाहती थीं और उनको प्रभु मिले। राधिका ने बेहद तन्मयता प्राप्त की थी। वे **कृष्ण-मय** बन गई थीं। उतनी तन्मयता किसी ने भी प्राप्त न की थी।

बिहारी कवि के अनुसार भगवान् कृष्ण का श्याम रङ्ग भगवान् का अनन्तत्व बताता है। अनन्त का नीला रङ्ग शुष्क है। राधिका का पीत रङ्ग रस–युक्त है। भगवान् कृष्ण की नील–देह पर राधिका के पीत रङ्ग की छाया पड़ने से शुष्क भगवान् हरे (रस–युक्त) बनते हैं। 'राधा-कृष्ण' की जप–महिमा का यही कारण है।

विश्व की परमेश्वरी

विश्व अनन्त है और अनन्त होने से प्रत्येक विन्दु मध्य विन्दु है। जो चीज सान्त है, उसका मध्य विन्दु एक ही होगा। यदि अनन्त का मध्य विन्दु एक ही माना जाए, तो अनन्त सान्त हो जाएगा। अतएव अनन्त का प्रत्येक विन्दु 'चिद्-विन्दु' है। उसमें जीवन्त 'चित्-शक्ति' है। प्रत्येक विन्दु या अणु में भयङ्कर शक्ति है।

यह सब सोचने पर मानना पड़ता है कि विश्व में दो चीजें हैं-एक व्यापक 'ब्रह्म' और दूसरी 'शक्ति'। व्यापक 'ब्रह्म'-शव है और बाकी जो कुछ है, वह 'शक्ति' है। इस 'शक्ति' को कुछ भी नाम दीजिए।

चाहे 'चित्-शक्ति' कहो या 'आदि-शक्ति' कहो या 'विश्व की परमेश्वरी' ही क्यों न कह डालो।

दश महा-विद्याएँ

विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय-इन तीन क्रियाओं का संचालन करनेवाली ब्रह्म-रूपिणी महा-शक्ति १० भावों में विभक्त है। १० में से ९ भाव क्रियात्मक हैं। क्रिया करने में आधार की जरूरत होती है। अतएव भगवती कालिका उन क्रियाओं को धारण करनेवाली महा-शक्ति हैं।

(१) उत्पत्ति, (२) स्थिति और (३)लय-इनमें से प्रत्येक क्रिया ३ भागों में विभक्त है। इन ९ क्रियाओं की अधिष्ठात्री ९ महा-शक्तियाँ हैं- १. भगवती भुवनेश्वरी, २. भगवती तारिणी, ३. भगवती भैरवी, ४. भगवती महा-लक्ष्मी, ५. भगवती श्रीविद्या (सुन्दरी), ६. भगवती पीताम्बरा (बगला) ७. भगवती छिन्नमस्ता, ८. भगवती मातङ्गी एवं ९. भगवती ज्येष्ठा (धूमावती)।

'श्री-यन्त्र'

'श्री-यन्त्र' में बिन्दु में भगवती दुर्गा माँ का भाव है। 'त्रिकोण' में श्री का भाव है। 'वसु-कोण' (आठ त्रिकोण) में श्री का तेज है। 'दशार-युग्म' (दो दस त्रिकोण) में भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव समत्व-भाव में विराजमान हैं। 'चतुर्दश मन्वार' (चौदह त्रिकोण) में दश-महा-विद्याएँ और जीवन की चार अवस्थाएँ- १. जाग्रत्, २. स्वप्न, ३. सुषुप्ति और ४. तुरीय। ये चौदह भाव हैं। 'जाग्रत्' में 'अहंकार' द्वारा क्रिया होती है। स्वप्न में 'मन' द्वारा क्रिया होती है। 'सुषुप्ति' में 'बुद्धि' की क्रिया और 'तुरीय' में 'चित्त' की क्रिया समाई हुई है।

इन सब कारणों स 'श्री-यन्त्र' की महिमा सबसे अधिक है।

शक्ति और शिव

मूल चैतन्य न स्त्री है, न पुरुष। ऐसा होते हुए भी चैतन्य को 'शक्ति' के अतिरिक्त दूसरा नाम नहीं दे सकते।

चैतन्य को सम्बोधित करने के लिए 'शक्ति' के अतिरिक्त दूसरा शब्द नहीं मिलता। शिव-शक्ति की द्वितता प्रवाह में दिखाई पड़ती है।

'प्रकृति' के प्रवाह में विद्यमान तीनों क्रियाओं को शिव अंकुश में रखते हैं। इन दोनों में से न कोई बड़ा है, न छोटा।

'शिव'-शब्द में से 'इ' के निकल जाने से 'शव' रह जाता है अर्थात् 'शक्ति' के बिना विश्व-सृष्टि सम्भव होती ही नहीं तथा महा विश्व-जाल से छूटने के लिए इस 'महा-शक्ति' के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है।

'चण्डी' : विशेष प्रस्तुति

दीक्षा-प्रकाश

◈ दीक्षा का अर्थ ◈

◈ दीक्षा के प्रकार ◈

◈ दीक्षा-रहस्य ◈

◈ दीक्षा-विवेचन ◈

◈ दीक्षा-विधि ◈

◈ क्रम-दीक्षा ◈

◈ पूर्णाभिषेक-विधान ◈

✶

सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

ऋतशील शर्मा

✶

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎(०५३२)-२५०२७८३

प्रकाशक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६

दूर-भाष : (०५३२)-२५०२७८३

तृतीय संशोधित एवं संवर्धित संस्करण

'आषाढ़ कृष्णाष्टमी, २०६३ वि० (१९ जून, २००६)

सर्वाधिकार सुरक्षित

'दीक्षा'

हेतु

उपयोगी पुस्तकें

१. मन्त्र सिद्धि का उपाय	६-००
२. मन्त्र-कोष	१५०-००
३. साधना-रहस्य	४०-००
४. मुद्राएँ एवं उपचार (सचित्र)	१५-००
५. धर्म-मार्ग पर	३५-००
६. साधक का संवाद	३५-००
७. तन्त्र-कल्पतरु	४०-००
८. पूजा-रहस्य	५०-००
९. मुमुक्षु मार्ग (दो भाग)	५५-००

अनुदान : ३५-०० रु०

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

अलोपी देवी मार्ग

प्रयाग-राज (उ०प्र०)-२११००६

अनुक्रम

१ दो शब्द (पांच)

२ दीक्षा १

'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

[दीक्षा का अर्थ, दीक्षा के प्रकार, पञ्चायतन-दीक्षा एवं क्रम-दीक्षा]

३ दीक्षा के भेद ५

'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

[१ स्पर्श-दीक्षा, २ दृग्-दीक्षा, ३ वेध-दीक्षा, ४ क्रिया-दीक्षा, ५ वर्ण-दीक्षा, ६ कला-दीक्षा, ७ शाम्भवी-दीक्षा, ८ वाग्-दीक्षा]

४ दीक्षा की आवश्यकता ७

श्री देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य

५ दीक्षा-रहस्य ८

पण्डित रघुवर मिश्र

६ दीक्षा-विवेचन १०

पं० कालीचरण पन्त

['दीक्षा'-अर्थात् मोक्ष - मार्ग में व्रती बनने का संस्कार, 'दीक्षा' अर्थात् दिव्य-ज्ञान द्वारा पाप से विशुद्धि प्राप्त करना, 'दीक्षा' अर्थात् अपूर्व 'श्रद्धा' का आदान तथा पूर्ण विश्वास का प्रदान, 'दीक्षा' अर्थात् बोध-मय शक्ति-रूपी सार-पदार्थ की प्राप्ति, दीक्षा अर्थात् तपस्या, 'दीक्षा' की विवेचना हेतु सृष्टि का विवरण जानना आवश्यक, आगमोक्त सृष्टि-विवरण, 'दीक्षा' अर्थात् 'शक्ति - पात' के भेद, 'क्रम - दीक्षा' का विवेचन, 'क्रम - दीक्षा' के भेद, आणव, मायिक तथा कार्मण-मल की निवृत्ति हेतु 'दीक्षा' की अनिवार्यता, स्थूल-देह का आगमोक्त विवरण, 'दीक्षा' अर्थात् पशु-रूप शिव को साक्षात् शिव बनाने की 'विलोम क्रिया', मन्त्रात्मक बीज का आगमोक्त विवरण, 'शब्द-ब्रह्म' की निःशब्द अवस्था की प्राप्ति ही 'दीक्षा' का लक्ष्य, 'दीक्षा' द्वारा स्वरूप का साक्षात्कार, 'दीक्षा' द्वारा मन का ब्रह्म-लीन होना, 'दीक्षा' द्वारा पूर्ण कैवल्य-मुक्ति-लाभ, जीवों के अधिकार-भेद से 'दीक्षा' के भेद, ज्ञान और अज्ञान से रहित करनेवाली

'शाम्भवी दीक्षा', अभेद-स्थिति को प्राप्त करानेवाली 'शाक्ती - दीक्षा', वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करानेवाली 'मान्त्री दीक्षा', 'दीक्षा' का स्वरूप—गुरुदेव (महा-काल आदि-नाथ) द्वारा शक्ति-पात] २२

७ दीक्षा-विधि

'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

दीक्षा-समय, शिष्य द्वारा आह्वान, गुरु-वरण, कलश-स्थापन, नामकरण २५

८ संक्षिप्त दीक्षा-विधि

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल २६

९ दीक्षा लेने से पूर्व ('दीक्षा' के सम्बन्ध में ज्योतिष-विज्ञान का मत)

पण्डित रामकिशोर पाठक, ज्योतिषी २९

१० क्रम-दीक्षा

श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

षडाम्नाय के यथार्थ ज्ञान हेतु 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता, क्रम-दीक्षा के सन्दर्भ में—'मन्त्र' द्वारा आम्नाय-परक 'चक्र - शुद्धि', 'ब्रह्म - तन्तु' के दर्शन के लिए 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता, 'क्रम-दीक्षा' द्वारा 'शिव-तत्त्व' की प्राप्ति, 'क्रम-दीक्षा' के द्वादश भेद—१ विद्या-क्रम, २ काद्याम्नाय-क्रम, ३ हाद्याम्नाय-क्रम, ४ हादि-पञ्च-क्रम, ५ कादि-षोडश-क्रम, ६ हादि-नव-क्रम, ७ कादि-नव-क्रम, ८ सादि-क्रम, ९ श्रीविद्या-चक्र-क्रम, १० महा-क्रम, ११ पूर्ण-क्रम, १२ लघु - क्रम, 'पादुका-दीक्षा' और क्रम-मन्त्र-ग्रहण के समय विघ्न, 'दीक्षा', 'क्रम-दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक'—स्त्रियों के लिए भी ग्राह्य ४

११ 'क्रम-दीक्षा' सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान

बगला-मुखी महा-विद्या के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण, 'शुद्धि' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण, 'पूर्णाभिषेक' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण, 'ब्रह्म-गायत्री' की विपरीत मूर्ति बगला-मुखी, 'कुण्डलिनी-रूपा' छिन्न-मस्ता, आम्नाय-नायिकाओं की अङ्ग बनकर, क्रमात्मिका हुई, इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण, लघु पूर्णाभिषेक और महा-पूर्णाभिषेक, मन्त्र-ध्यान आदि के आम्नाय सङ्केत ४

१२ 'क्रम-दीक्षा' की पूर्व-भूमिका

'दरभङ्गा-राजवंश-सम्भूत' श्री श्यामानन्द नाथ

१३ सनातनी दीक्षा-क्रम ४९

श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

'दक्षिणाम्नाय'-क्रम की 'काली' और 'तारा'-मन्त्र-विद्याएँ—(१) हादि (हंस)-क्रम, (२) कादि (कुण्डलिनी)-क्रम, (३) सादि (सम्वरोधि) - क्रम, दक्षिणाम्नाय काली का पञ्चम - क्रम, काली-विद्या की सन्ध्या, दक्षिणाम्नाय तारा का पञ्च-क्रम, तारा-विद्या की सन्ध्या, ऊर्ध्वाम्नाय - क्रम की बाला-विद्या, बाला-विद्या की सन्ध्या, दक्षिणाम्नायात्मक काली, तारा एवं ऊर्ध्वाम्नायात्मक बाला का 'महा-क्रम' तथा 'पूर्ण-क्रम', उत्तराम्नाय का पञ्च - क्रम, उत्तराम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा, उत्तराम्नाय की सन्ध्या, पूर्वाम्नाय के पञ्च-क्रम, पूर्वाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा, पूर्वाम्नाय की सन्ध्या, पश्चिमाम्नाय (कुब्जिका-विद्या) के पञ्च-क्रम, कुब्जिका-विद्या का अर्चन-क्रम, पश्चिमाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा, पश्चिमाम्नाय की सन्ध्या, पश्चिमाम्नाय (श्रीविद्या महा-कादि कूट) के पञ्च-क्रम, हाद्याम्नाय पञ्च-क्रम, काद्याम्नाय पञ्च-क्रम, पञ्च-लक्ष्मी-क्रम, चक्रेश्वरी-क्रम की १५ विद्याएँ, भगवती दुर्गा के पञ्च-क्रम

१४ पूर्णाभिषेक-विधान ७९

'महा-निर्वाण तन्त्र' के आधार पर

'पूर्णाभिषेक' के पहले दिन, 'पूर्णाभिषेक' के दिन, 'वीर-साधक' की परिभाषा, 'कौल-साधक' की परिभाषा, पूर्णाभिषिक्त कौलों की प्रशंसा

१५ दीक्षा अर्थात् 'मुक्ति-साधन' की विवेचना ८५

श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

वैष्णव, शैव, दक्षिण-वीर, सिद्धान्त तथा कौल-मार्ग का वर्णन, चार प्रकार की 'मुक्ति', आगम के अनुसार नीचे से ऊपर जाने के मार्ग, वैष्णवों के भेद, शैवों के भेद, वैष्णव, शैव और कौल-मार्ग

परिचय

'साधना-मार्ग' में 'दीक्षा-तत्त्व' का महत्त्व

'साधना-मार्ग' में किसी भी बात को सीखने का प्रश्न जहाँ उठता है, वहाँ एक **'योग्य गुरु'** की आवश्यकता अपने आप सामने आ पड़ती है क्योंकि जब तक विषय को सम्पूर्णत: और विशुद्धतया जाननेवाले **'विज्ञ गुरु'** की सहायता नहीं मिलती, तब तक सच्चा ज्ञान दुर्लभ ही होता है। **'साधना-मार्ग'** में **'गुरु'** का महत्त्व और भी अधिक है। वह न केवल **'शिष्य का मार्ग-प्रदर्शन'** करता है, अपितु अपने **'साधना-बल'** से वह उसमें साधना के उपयुक्त **आध्यात्मिक स्फूर्ति** और **उत्साह** भी भरता है।

सद्-गुरु को खोज निकालना या पाकर पहचान लेना सरल काम नहीं है। अतएव शास्त्रों में शिष्य को गुरु-अन्वेषण में सुविधा पहुँचाने की दृष्टि से, **सद्-गुरु के लक्षण** दिए गए हैं। शास्त्रों में जैसे सच्चे गुरु को प्राप्त करना आवश्यक बताया गया है, वैसे ही सच्चे शिष्य को अङ्गीकार करना भी आवश्यक बताया गया है। प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने के उपयुक्त नहीं होता। अयोग्य शिष्य को दिया गया **'मन्त्र'**, उसी तरह बेकार जाता है, जैसे ऊसर में बीज बोने से कोई फल नहीं होता। अतएव सच्चे शिष्य के लक्षण भी शास्त्रों में बताए गए हैं।

'साधना-मार्ग' में पहली सीढ़ी—**'दीक्षा'** है। दीक्षा द्वारा उत्तम भावनाओं को हृदय में जगा कर साधना की दिशा में प्रगति करना सम्भव हो जाता है। **'दीक्षा'** का व्यापक अर्थ यह है कि **अज्ञान या पाप के अन्धकार को दूर करने के लिए ज्ञान का प्रकाश प्रदान करना**। इस भाव को स्पष्ट करनेवाली 'दीक्षा' की दो परिभाषाएँ हैं—(१) **'दीयते ज्ञानम्'** और (२) **'क्षीयते पापावरणम्'** अर्थात् **'दीक्षा'** शब्द के **'द'** अक्षर से ज्ञान देने का आशय निकलता है और **'क्ष'** अक्षर से पाप के पर्दे को फाड़ने का तात्पर्य है।

'दीक्षा - काल' में शिष्य को कई नियमों का पालन करना पड़ता है और कई क्रियाएँ उसके **'शरीर-शोधन'** के लिए की जाती हैं। इनमें **नित्य-होम, दिन - कृत्य** और

अध्व-शोधन आदि उल्लेखनीय हैं। कभी-कभी 'दीक्षा' प्राप्त करने के लिए, विशेष कृत्य भी करने की आवश्यकता पड़ती है।

इन बातों से स्पष्ट है कि **'दीक्षा'** का शाब्दिक अर्थ भले ही **'अज्ञान को नाश करनेवाली क्रिया'** हो, परन्तु व्यवहार में वह दूसरे ही रूप में दिखाई देती है। जैसे और बातों में देखा जाता है, वैसे ही इसमें भी प्रगति के अनेक **'क्रम'** हैं। **'प्रारम्भिक दीक्षा'** में जो 'मन्त्र' प्रदान किया जाता है, उससे शिष्य पर तुरन्त विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। धीरे-धीरे जब उसकी मानसिक उन्नति होती है और कुछ समय तक वह उस मन्त्र का अभ्यास कर लेता है, तब 'गुरु' और मन्त्र प्रदान करता है तथा पहले से कठिन क्रियाएँ व नियम उसके लिए निर्दिष्ट करता है। इस प्रकार शिष्य की अधिकाधिक प्रगति क्रमशः होती जाती है।

'दीक्षा' के कई भेद हैं। यथा—**क्रियावती, वर्ण-माला, कलावती** और **वेध-मयी**। **'क्रियावती दीक्षा'**, सामान्य शिष्य के लिए है और **'वर्ण-माला दीक्षा'**, साधारण मनुष्यों से उन्नत व्यक्ति को प्रदान की जाती है। इसी प्रकार **'कलावती दीक्षा'** और भी अधिक योग्य शिष्य के लिए निर्दिष्ट की गई है तथा **'वेध-मयी दीक्षा'**, सर्व-श्रेष्ठ जिज्ञासु को दी जाती है। **'वेध-मयी दीक्षा'** से शिष्य गुरु या 'शिव-वत्' हो जाता है और यही सर्वोच्च पूर्णता है। उपर्युक्त चार भेदों के अतिरिक्त **'दीक्षा'** के दस प्रकार और हैं। इन्हें सामूहिक रूप से **'आणवी दीक्षा'** के नाम से कहा गया है।

वास्तव में, 'दीक्षा'-द्वारा गुरु और शिष्य का दिव्य सम्बन्ध अस्तित्व में आता है। गुरु, शिष्य को आत्म-वत् मानकर, उसके निःश्रेयस की सतत कामना से अभिभूत रहता है और शिष्य तो 'आत्म-कल्याण' के लिए उसकी शरण में जाता ही है। अतएव गुरु के प्रति शिष्य का कर्त्तव्य क्या है, यह जानना और समझना अत्यन्त आवश्यक है। आध्यात्मिक क्षेत्र में सारी सफलता इसी बात पर अवलम्बित है कि 'मन्त्र' का प्रयोग उपयुक्त क्रिया के साथ ठीक-ठीक किया जाए, इसके लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि शिष्य गुरु के प्रति असीम भक्ति-भाव रखे और एकाग्र-चित्त होकर उनके कथन को सुनकर तदनुसार कार्य-तत्पर हो।

शिष्य को न केवल **पूर्ण अनुशासन** का पालन करना होता है अपितु उसे यहाँ तक भावना करनी पड़ती है कि वास्तव में वह **'गुरु-देव'** से अभिन्न है। **'ध्यान'** करते समय

उसे यह भावना करनी आवश्यक है कि वह 'गुरु-देव' में है और 'गुरु-देव' उसमें वर्तमान हैं। बिना ऐसी भावना किए पूर्ण ज्ञान असम्भव है।

'गुरु-देव' को 'मन्त्र' या 'इष्ट-देवता' से अभिन्न माना गया है। सद् - गुरु के जो लक्षण शास्त्रों में बताए गए हैं, वे वास्तव में देवता के आविर्भाव के बाह्य संकेत हैं, जिनसे शिष्य गुरु को साक्षात् 'इष्ट-देवता' के रूप में अनुभव कर, अपना कल्याण साधन करने में सफल-मनोरथ होता है। 'गुरु-दैवत'-ऐक्य की भावना, जब पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है, तब शिष्य 'गुरु' में इष्ट-देवता का ही दर्शन करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जो **'साधना-मार्ग'** में प्रवेश करने के इच्छुक होते हैं, उन्हें **'दीक्षा-तत्त्व'** के महत्त्व को भले प्रकार हृदयङ्गम कर ही आगे बढ़ना होता है। ऐसा करने पर ही वे **'आदर्श साधक'** हो सकते हैं।

प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह 'दीक्षा-प्रकाश' में 'दीक्षा', दीक्षा के भेद, दीक्षा की आवश्यकता दीक्षा-रहस्य, दीक्षा-विधि, क्रम-दीक्षा, सनातनी दीक्षा-क्रम एवं पूर्णाभिषेक-विधान आदि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। हमें विश्वास है कि सभी साधकों को इससे पर्याप्त मार्ग-दर्शन प्राप्त हो सकेगा और वे अपनी साधना के विकास तथा उन्नति के पथ को पहचान कर, अपना सब प्रकार से कल्याण साधित कर सकेंगे। यही इस निबन्ध-संग्रह के प्रकाशन का हमारा ध्येय भी है। सभी साधकों के प्रति शुभ-कामनाओं के साथ–

–ऋतशील शर्मा

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज
'आषाढ़ कृष्णाष्टमी, २०६३वि० (श्रीशीतला अष्टमी)
१९ जून, २००६

क्षा

का अर्थ

दीयते परमा सिद्धिः क्षीयते पाप -, प्राप्यते परमं ज्ञानं तेन दीक्षा इतीरिता ।। दिव्य-भाव-प्रदानाच्च क्षालनात् किल्वि, दीक्षेति कथिता सद्भिर्भव-बन्ध-विमोचनी ।

जिसके द्वारा साधक स्वकीय सम्पू का नाश कर दिव्य-भाव, परम - सिद्धि तथा परम-ज्ञान को प्राप्त होता है, उसे 'दीक्षा' कहते हैं। में गुरु-देव अपनी ओर से शिष्य के आत्म - दान, ज्ञान-सञ्चार अथवा शक्ति-पात करते हैं, जिष्य के हृदय में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियाँ उद्बुद्ध हो जाती हैं। इससे ही शिष्य की समस्त शारी शुद्धियाँ लोप को प्राप्त होती हैं और शरीर शुद्ध होने के कारण वह सुर-सपर्या का पूर्णाधिकारी हो है। यही 'दीक्षा' का अर्थ है।

' के प्रकार

सामान्यतः 'दीक्षा' तीन प्रकार की है—१ शाम्भवी, २ शाक्ती और ३ मान्त्री।

'शाम्भवी दीक्षा' में गुरु-देव 'शिव' के रक्त और शुक्ल चरणों का 'ब्रह्म-रन्ध्र' में सहस्र-दल-कमल' की कर्णिका पर शिष्य से चिन्तन कराते हैं और अनन्तर 'सहस्र - दल - पङ्कज' से विनिःसृत 'सुधा-धारा' से उसके बाह्य और आभ्यन्तर प्रकार के मलों को दूर कर उसके 'सहस्रार' को प्रफुल्लित कर देते हैं, जिससे ज्ञान - चक्षु सदा ए खुल जाता है! ऊपर कहे गए रक्त - शुक्ल चरणों से मिश्र-चरण और निर्वाण चरणों का भी ज्ञान है। चारों ही चरणों का चिन्तन करना चाहिए। विशेषतः ये सब बातें गुरु-लक्ष्य हैं, गुरु-देव प्रकार से समझा सकते हैं।

'शाक्ती दीक्षा' में 'मूलाधार' से है 'ब्रह्म-रन्ध्र'-पर्यन्त शिष्य की 'चिद्रूपा शक्ति' को जगाकर तथा उसे 'ब्रह्म-नाड़ी' में से ले जाकर पर-शिव में मिला देते हैं। उसकी प्रकाश-लहरी से ही गुरु-देव पाप-पाशों को दग्ध कर देते हैं। यह शक्ति-प्रकाशरूपा 'शाक्ती दीक्षा' कहलाती है, जिससे गुरु-देव शिष्य में अपनी शक्ति का सञ्चार कर देते हैं।

'मान्त्री दीक्षा' में शास्त्रोक्त शुभ पर यथा-विधि मन्त्र दिया जाता है।

उपर्युक्त तीनों दीक्षाओं को एक में ही शिष्य के लिए देना मुख्य पक्ष है। इसमें निम्न-लिखित 'परशुराम - सूत्र' प्रमाण है। यथा—**"सर्वाश्च कुर्यात्"** इति, अर्थात् तीनों दीक्षाओं को एक साथ करे।

'मान्त्री दीक्षा' को **'आणवी दीक्षा'** भी कहते हैं। बहुत से तन्त्र-ग्रन्थों में **'मान्त्री दीक्षा'** के दश भेद माने गए हैं। यथा—१ स्मार्ती, २ मानसी, ३ यौगी, ४ चाक्षुषी, ५ स्पार्शिकी, ६ वाचिकी, ७ मान्त्रिकी, ८ हौत्री, ९ शास्त्री और १० अभिषेचिका।

१ स्मार्ती—यह 'दीक्षा' जब गुरु और शिष्य भिन्न-भिन्न देशों में स्थित हों, तब होती है। गुरु शिष्य का स्मरण करते हैं और उसके विवि पापों का विश्लेषण करके उन्हें भस्म कर देते हैं, पुनः दिव्य पुरुष की सृष्टि कर 'भूत-शुद्धि' में वर्णित 'य-योग' क्रम से उसे परम शिव में स्थित कर देते हैं।

यदि मध्य में विष्णु को रखे, तो ईशान में शिव, आग्नेय में गणेश और नैऋत्य में सूर्य, वायव्य दिशा में शक्ति का स्थापन करे।

शङ्करं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत् । आग्नेय्यां तपनं चैव नैर्ऋत्यां गण - नायकम् ।।
वायव्यां पार्वतीं चैव स्वर्ग-मोक्ष - प्रदायिनीम् ।

यदि मध्य में शिव हों, तो ईशान में विष्णु, आग्नेय में सूर्य, नैऋत्य में गण-पति और वायव्य कोण में भगवती को पूजना चाहिए।

आदित्यं च यदा मध्ये ऐशान्यां शङ्करं यजेत् । आग्नेय्यां गण-नाथं च नैर्ऋत्यां केशवं यजेत् ।
वायव्यामम्बिका-देवीं स्वर्ग-साधन - भूमिकाम् ।।

यदि मध्य में रवि-देव हों, तो ईशान में शिव, अग्नि में गणेश, नैऋत्य में लक्ष्मी - पति और वायव्य दिशा में भगवती को स्थापित करना चाहिए।

गण-नाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत् । आग्नेय्यामीश्वरं चैव नैर्ऋत्ये तपनं तथा ।।
वायव्ये पार्वतीं चैव पूजयेज्जगदम्बिकाम् ।।

यदि मध्य में गणेश जी स्थापित हों, तो ईशान में विष्णु, आग्नेय में सदा-शिव, नैऋत्य में सूर्य और वायव्य कोण में जगदम्बिका की पूजा करे।

'गणेश-विमर्शिनी' के अनुसार क्रम-भङ्ग करने से सिद्धि प्राप्त होने के स्थान में हानि होती है। 'रामार्चन-चन्द्रिका' के आधार पर उक्त क्रम में कहीं-कहीं पर व्युत्क्रम भी हो सकता है। कुछ देवताओं की दीक्षा लेने में 'पञ्चायतन-पूजा' की आवश्यकता नहीं होती। 'तन्त्रसार' में कहा भी है–

तारायां छिन्नमस्तायां भैरव्यां मञ्जु-घोषके । श्यामलायां तथा रौद्रे पञ्चाङ्गं नेष्यते बुधैः ।।

श्यामा, भैरवी, छिन्नमस्ता, श्यामला (मातङ्गी) देवियों और मञ्जु-घोष तथा रुद्र आदियों के अर्चन में पञ्चाङ्ग-पूजा की आवश्यकता नहीं होती।

क्रम-दीक्षा—तन्त्र-शास्त्र में इसे बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसकी बहुत बड़ी महिमा बताई गई है। इसमें मन्त्र का षट्-चक्र-शोधन नहीं होता। यह दीक्षा गुरु-देव की अद्वितीय कृपा से उपलब्ध होती है। इसमें दिवस, मास और वर्षों के क्रम से 'दीक्षा' और 'अभिषेक' होते ही रहते हैं, अतएव इसका नाम 'दीक्षा-क्रम' है। जैसे पढ़नेवाला छात्र प्रतिवर्ष अगली उच्च-श्रेणी में चढ़ता जाता है और जो बहुत ही योग्य होता है, उसे वर्ष में 'दुहरी कक्षोन्नति' भी मिल जाती है, उसी प्रकार गुरु-देव शिष्य की योग्यता देखकर कभी एक वर्ष में और कभी वर्ष-पूर्व ही दो-तीन बार एक दीक्षा से दूसरी दीक्षा के स्तर में पहुँचाते जाते हैं और अन्त में श्रीनाथ-कृपा द्वारा उसका दीक्षा-कार्य समाप्त हो जाता है, किन्तु यह दीक्षा क्रम सामान्य लोगों के लिए नहीं है। अतः गुरु - देव और शास्त्रों के द्वारा ही इसका रहस्य जान सकते हैं।

'विश्वसार तन्त्र' में दीक्षा तीन प्रकार की बताई है—**१ महा-दीक्षा, २ दीक्षा और ३ उपदेश।** बहुत से तन्त्र-कार **'महा-दीक्षा'** और **'दीक्षा'** को अन्य युगों के लिए बताते हैं और कलियुग के लिए केवल **'उपदेश'** का ही विधान करते हैं। कहा भी है (विश्वसार तन्त्र)—

महा-दीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्ततः परम् । युगे युगे च कर्तव्या उपदेशः कलौ युगे ।।
चन्द्र-सूर्य - ग्रहे तीर्थे सिद्ध - क्षेत्रे शिवालये । मन्त्र - मात्र प्रकथनं उपदेश इहोच्यते ।।

दीक्षा के भेद

शिष्य के गुरु से 'दीक्षित' होने पर उसमें 'दिव्य भाव' आ जाते हैं अर्थात् गुरु से शिष्य को 'दिव्य-भाव' प्रदान किए जाने पर, उसके पाप धुल जाते हैं और वह 'दीक्षित' होने पर संसार के बन्धनों से भी मुक्त हो जाता है। 'दीक्षा' शब्द दू-दाने और क्षि--क्षये धातुओं से बनता है, अतः 'दिव्य भाव' के प्रदान से और पापों के प्रक्षालन से 'दीक्षा' कही जाती है। (कुलार्णव तन्त्र)।

गुरु द्वारा शिष्य को 'दीक्षा' में परम उत्कृष्ट सिद्धि दी जाती है, जिसके द्वारा शिष्य के पापों का क्षय (नाश) हो जाता है। 'पाप-क्षय' होने पर शिष्य का अपने 'इष्ट' में परम ध्यान लग जाता है अर्थात् वह ध्यान में इष्ट-दर्शन करने लग जाता है। अतः गुरु द्वारा दिया गया यह मन्त्रोपदेश 'दीक्षा'-नाम से प्रख्यात है।

दीक्षा आठ प्रकार की कही गई है। यथा—१ स्पर्श-दीक्षा, २ दृग्-दीक्षा, ३ वेध-दीक्षा, ४ क्रिया-दीक्षा, ५ वर्ण-दीक्षा, ६ कला-दीक्षा, ७ शाम्भवी दीक्षा और ८ वाग्-दीक्षा।

(१) स्पर्श-दीक्षा

'दीक्षा' का पहला प्रकार 'स्पर्श-दीक्षा' है। इसके बारे में लिखा है—

यथा पक्षी स्व-पक्षाभ्यां शिशून् उद्धरते शनैः। स्पर्श-दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये!॥

अर्थात् हे प्रिये! जैसे मादा पक्षी अपने पङ्खों से अपने बच्चों की रक्षा करती है और उनको बड़ा करती है, इसी प्रकार गुरु-देव अपना वरद हस्त शिष्य के मस्तक पर रखकर उसकी रक्षा करते हैं और उसके ज्ञान की वृद्धि करते हैं। यह 'स्पर्श-दीक्षा' कही जाती है।

(२) दृग्-दीक्षा

स्वापत्यानि यथा मत्स्यो वीक्षणेनैव पोषयेत्। दृग्भ्यां दीक्षोपदेशश्च तादृशः परमेश्वरि!॥

अर्थात् हे परमेश्वरि! जिस प्रकार मछली अपने बच्चों को दूर से देखकर ही उनका संरक्षण और पालन-पोषण करती है, एवमेव सद्-गुरु भी अपने शिष्य को अपने पास बैठाकर अपनी दिव्य दृष्टि से (शिष्य की आँख से आँख मिलाकर) शिष्य में ज्ञान का सञ्चार कर देते हैं अर्थात् शिष्य की ओर देखने मात्र से उसमें 'शक्ति-पात' करते हैं।

(३) वेध-दीक्षा

यथा कूर्मः स्व-तनयान् ध्यान-मात्रेण पोषयेत्। वेध-दीक्षोपदेशश्च मानुषस्य तथा विधिः॥

अर्थात् जैसे कछुवे के बच्चों की माता अपने बच्चों का केवल ध्यान रखने से ही पालन-पोषण करती है, तथैव श्री गुरु-देव ध्यान मात्र करने से शिष्य में 'शक्ति-पात' (शक्ति का सञ्चार) कर उसे कृतार्थ कर देते हैं अर्थात् उसका कल्याण कर देते हैं।

इस दीक्षा के होने पर तत्काल ही शिष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, किन्तु इस दीक्षा में श्री गुरु-देव की परम कृपा और शिष्य का कर्म-साम्य दोनों का ही महत्व है। 'अम्बा-स्तव' में लिखा है—

जन्तोरपश्चिम-तनोः सति कर्म-साम्ये, निश्शेष-पाश-पटलच्छिदुरानिमेषात्।
कल्याणि! देशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण, कारुण्यतो भवसि शाम्भव वेध-दीक्षा॥

अर्थात् जिस मनुष्य (शिष्य) का यह चरम जन्म होता है, अन्तिम जन्म होता है तथा जिसका कर्म-साम्य होता है, उसी के ऊपर श्री गुरु की करुणा द्वारा सम्पूर्ण पाश (बन्धन) अर्थात् अष्ट-पाश तथा पाशान्तरों (दूसरे बन्धनों) को क्षण मात्र में काटनेवाली देशिक (गुरु) के कटाक्ष द्वारा अर्थात् शिष्य की दृष्टि से दृष्टि मिलानेवाली 'वेध-दीक्षा' होती है।

(४) क्रिया-दीक्षा

क्रिया-दीक्षाऽष्टधा प्रोक्ता कुल-मण्डप-पूर्विका। कलशादि-समायुक्ता कर्तव्या गुरुणा वहिः॥

अर्थात् 'क्रिया-दीक्षा' आठ प्रकार की बताई गई है। संक्षिप्त रूप में पहले विधि-पूर्वक षडध्व-शोधन किया जाता है, तदनन्तर गुरु-देव अपने शरीर से ब्रह्म-रन्ध्रस्थ 'चित्-शक्ति' को क्रम-पूर्वक निकाल कर शिष्य के भीतर हृदय में उसका प्रवेश कराते हैं।

(५) वर्ण-दीक्षा

वर्ण-दीक्षा त्रिधा प्रोक्ता द्वि-चत्वारिंशदक्षरैः। पञ्चाशद्-वर्णकैर्देवि ! द्वि-षष्टि-लिपिभिस्तु वै॥

अर्थात् शिष्य के शरीर में 'मातृका-रूपिणी भगवती' के ४२ वर्णों से अथवा ५० अक्षरों से या ६२ भूत-लिपियों से न्यास द्वारा उसमें 'देवता-भाव' पैदा किया जाता है अर्थात् मातृका-न्यास और इष्ट-मन्त्र-न्यास द्वारा शिष्य-शरीर में 'देवत्व' का अवतरण कराया जाता है।

(६) कला-दीक्षा

कला दीक्षा च विज्ञेया कर्तव्या विधि-वत् प्रिये ! निवृत्तिर्जानु-पर्यन्तं तलादारभ्य संस्थिता॥
इयं प्रोक्ता कुलेशानि ! दिव्य-भाव-प्रदायिनी।

अर्थात् कलाओं के न्याम - पूर्वक यह दीक्षा की जाती है। 'कला - न्यास' निम्न प्रकार करना चाहिए–

पाद-तलात् जानु-पर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै नमः। जान्वोर्नाभि-पर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै नमः। नाभेः कण्ठ-पर्यन्तं ॐ विद्यायै नमः। कण्ठाल्ललाटान्तं ॐ शान्त्यै नमः। ललाटाद् ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्तं ॐ शान्त्यतीतायै नमः। ब्रह्म-रन्ध्रात् आललाटं ॐ शान्त्यतीतायै नमः। ललाटात् कण्ठ-पर्यन्तं ॐ शान्त्यै नमः। कण्ठात् नाभि-पर्यन्तं ॐ विद्यायै नमः। नाभेर्जानु-पर्यन्तं ॐ प्रतिष्ठायै नमः। जान्वोः पाद-पर्यन्तं ॐ निवृत्त्यै नमः।

इस न्यास में प्रत्येक नाम के पीछे **'कलायै नमः'** लगेगा। अर्थात् **'निवृत्ति - कलायै नमः'** या **'निवृत्त्यै कलायै नमः'** ऐसा होगा। यह 'कला-दीक्षा' साधक को 'दिव्य-भाव' प्रदान करनेवाली है। इससे पाँच महा-भूतों, कला-शक्ति को 'बेध' द्वारा शिष्य के शरीर में प्रवेश कराया जाता है। यह कला पाँच और अट्ठाइस भेदों द्वारा दो प्रकार की मानी जाती है।

(७) शाम्भवी-दीक्षा

गुरोरालोक-मात्रेण भाषणात् स्पर्शनादपि। सद्यः संजायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी मता॥

अर्थात् श्रीगुरुदेव के कृपा-पूर्वक देखने से अथवा सम्भाषण (वार्तालाप) से तथा स्पर्श (प्रेम-पूर्वक शिष्य को छूने मात्र) से शिष्य के हृदय में जो एकदम (तत्काल) ही ज्ञान उत्पन्न होने लगता है, उसे **'शाम्भवी दीक्षा'** कहते हैं।

(८) वाग्दीक्षा

मनोर्दीक्षा द्विधा प्रोक्ता तीव्रा तीव्र-तमाऽपि च । पाप-मुक्तः क्षणात् शिष्यः छिन्न-पाशस्तथा भवेत् ।
ब्रह्म-व्यापार-निर्मुक्तो भूमौ पतति तत्क्षणात् । साक्षात्-दिव्य-भावोऽसौ सर्वं जानाति शाम्भवि ! ।।

अर्थात् हे शाम्भवि ! वाणी द्वारा जो 'मन्त्र-दीक्षा' दी जाती है, उसे 'वाग्दीक्षा' कहते हैं। उसके 'तीव्रा' और 'तीव्र-तमा' नामक दो भेद हैं।

जिस समय षडध्व-ज्ञानी गुरु शिष्य के जानु, नाभि, हृदय आदि षट् स्थानों में भुवन, तत्त्व, कला, वर्ण, पद और मन्त्राध्व का चिन्तन कर गुरूपदिष्ट मार्ग से वेध कर मन्त्र प्रदान करता है, उसी समय शिष्य सब पापों से मुक्त होकर तथा पाश-रहित होकर भूमि पर लेटता है और उसे 'दिव्य - भाव' प्राप्त होता है।

इस प्रकार वेध-द्वारा 'वाग्दीक्षा' से दीक्षित पुरुष (शिष्य) साक्षात् 'शिव-रूप' हो जाता है और उसको पुनः जन्म लेकर संसार में नहीं आना पड़ता । यही 'वाग्दीक्षा' के द्वितीय भेद 'तीव्र-तरा दीक्षा' का रहस्य है।

'दीक्षा-भेद' के उपर्युक्त वर्णन से ही 'दीक्षा' की इति-श्री नहीं समझनी चाहिए। आगे क्रम-दीक्षा, मेधा, महा-मेधा आदि दीक्षाएँ भी हैं, जिनके अन्तर्गत शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक आदि आठ प्रकार के अभिषेक और वेदाचार आदि सात आचार, जिनमें 'कौलाचार' सर्वोत्तम माना गया है, वर्णित हैं। ये सात आचार पशु-भाव, वीर-भाव और दिव्य-भाव—इन तीन भावों के अन्तर्गत आते हैं।

'दीक्षा' और उसकी आवश्यकता

आध्यात्मिक 'साधना' में प्रविष्ट होने से पूर्व हमें सर्व-प्रथम 'दीक्षा' की आवश्यकता प्रतीत होती है ? परन्तु क्यों ?

मनुष्य को अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों और वर्तमान जन्म के अधिकारों का तो पता रहता नहीं, अतः वह अपने उपयुक्त 'साधना-पथ' नहीं चुन पाता, क्योंकि उसमें उतनी बुद्धि ही नहीं रहती। कोई-कोई साधक तो अपने मित्र को साधना करते देख, या किसी के द्वारा किसी भी साधना की प्रशंसा सुनकर साधना आरम्भ कर देते हैं, परन्तु उनके मन में संशय उठते रहते हैं कि यह ठीक है या नहीं। जब उनको सिद्धि में विलम्ब दिखाई पड़ता है, अथवा किसी दूसरी साधना को अधिक उत्तम समझते हैं, तो प्रथम साधना छोड़ दूसरी साधना आरम्भ कर देते हैं। आज 'काली' की साधना, तो कल 'कृष्ण' की, परसों 'हनुमान' की, नरसों 'शिव' की।

इस प्रकार न तो किसी भी एक की पूर्ण साधना होती है और न ही सफलता मिलती है। अतएव 'साधना-पथ' पर अग्रसर होने के लिए दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है, परन्तु ऐसा विश्वास किस प्रकार हो ? इसी के लिए 'दीक्षा' की आवश्यकता होती है।

दीक्षा-रहस्य

आध्यात्मिक जीवन के लिए दीक्षा परम आवश्यक है। 'दीक्षा' के बिना इस जीवन का श्रीगणेश होना बिल्कुल असम्भव है। गुरु से अपनी आध्यात्मिक रुचि के अनुकूल 'उपासना' के लिए मार्ग निर्धारित करवाना ही 'दीक्षा' है। अथवा अपनी भावना के अनुकूल अपने उपास्य देव के मन्त्र को गुरु से ग्रहण करना और उसके पुरश्चरण के द्वारा अपनी 'आध्यात्मिक शक्ति' को विकसित करना ही 'दीक्षा' है। इसलिए तन्त्रों ने इस छोटे से- दीक्षा -शब्द के दोनों खण्डों का तात्त्विक अर्थ बताया है। कुछ तन्त्रों के उद्धरणों को यहाँ पर उद्धृत करना आवश्यक ज्ञात होता है, जिससे पाठक 'दीक्षा' के रहस्य के को समझने में समर्थ होंगे ।

ददाति शिव-तादात्म्यं क्षिणोति च मल-त्रयम् । अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता दीक्षा-तत्त्वार्थ-वेदिभिः ॥

(रुद्रयामल तन्त्र)

अर्थात् जो शिव के साथ तादात्म्य देती है और तीनों प्रकार के मल को दूर करती है, उसको 'दीक्षा' कहते हैं।

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाश-बन्धनम् । अतो दीक्षेति देवेशि ! कथिता तत्त्व-चिन्तकैः ॥

मनसा कर्मणा वाचा यत् पापं समुपार्जितम् । तेषां विशेष-करणी परम-ज्ञानदा यतः ॥

तस्माद् दीक्षेति लोकेऽस्मिन् गीयते शास्त्र-वेदकैः । (योगिनी-तन्त्र)

अर्थात् जिसके द्वारा आत्यन्तिक ज्ञान की प्राप्ति होकर आठ प्रकार के बन्धनों का नाश होता है, हे पार्वति ! उसे तत्वज्ञ लोग 'दीक्षा' कहते हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक उपार्जित पापों का नाश कर परम ज्ञान को देती है, अतः शास्त्र लोग इसको 'दीक्षा' कहते हैं।

दीयते ज्ञान-विज्ञानं क्षीयन्ते पाप-राशयः । तेन दीक्षेति हि प्रोक्ता प्राप्ता चेत् सद्-गुरोर्मुखात् ॥

असद् गुरुः स्वयं नष्टः, कथं तारयते परम् । (मेरु-तन्त्र)

अर्थात् जिससे ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होती है और पाप-समूह नष्ट होते हैं—ऐसे सद्-गुरु के मुख से प्राप्त 'मन्त्र-ग्रहण' को 'दीक्षा' कहते हैं। 'असद्-गुरु' अर्थात् भ्रष्ट गुरु तो स्वयं ही अपने दुराचरण के कारण नष्ट हो जाता है, वह दूसरे को अर्थात् शिष्य को मुक्त कैसे करा सकता है ?

उपर्युक्त वचनों की आलोचना करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'दीक्षा' शब्द के **'दी'** और 'क्षा' दोनों खण्ड सार्थक हैं। **'दी'**—अखिल पुण्य और ज्ञान देने के अर्थ का प्रतिपादन करता है और **'क्षा'** पापादि को नाश करने का अर्थ रखता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'आध्यात्मिक जीवन' के लिए 'दीक्षा' कितनी आवश्यक है। 'लौकिक विद्या' के उपार्जन के लिए जिस प्रकार किसी प्रकार के स्कूल, विद्यालय या कालेज में भर्ती होना परम आवश्यक है, उसी प्रकार 'अध्यात्म-तत्त्व' की शिक्षा के लिए भी किसी-न-किसी स्कूल या कालेज - रूपी 'उपासना-काण्ड' के उपास्य देव की शरण में जाना परम आवश्यक है।

'उपासना-शास्त्र' की अमूल्य ग्रन्थ-राशि तन्त्रों में 'दीक्षा' की आवश्यकता बताते हुये जो बचन कहे हैं, उनको पढ़ने पर इसका महत्त्व 'वैदिक संस्कारों' से तनिक भी अल्प नहीं मालूम पड़ता। बल्कि स्पष्ट 'शिवाज्ञा' है कि 'दीक्षा' के बिना कोई किसी प्रकार का देव या पितर कर्म कर ही नहीं सकता।

'दीक्षा' वस्तुतः वैदिक 'संस्कारों' से अधिक व्यापक है। 'वैदिक संस्कार' तो केवल द्वि-जातियों तक ही सीमित हैं, किन्तु यह चातुर्वर्ण्य तक व्यापक है।

द्विजानामुपनीतानां, स्व - कर्माऽध्ययनादिषु।
तथा चादीक्षितानां च, मन्त्र-देवार्चनादिषु॥
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं मन्त्र-संस्कृतम्। (मेरु-तन्त्र)

जपो देवार्चन-विधिः, कार्यो दीक्षाऽऽन्वितैर्नरैः। (मन्त्र-मुक्तावली)

अदीक्षिताः ये कुर्वन्ति, जप-पूजादिकाः क्रियाः।
न भवेत्तु फलं तेषां, शिलायामुप्त-बीज-वत्॥ (योगिनी-तन्त्र)

यस्य दीक्षा शिवे ! नास्ति, जीवनान्तं च जन्मिनः।
स जातु नोत्तरेद् देवि ! निरयाम्बु-निधेः क्वचित्॥
दीक्षा-हीनस्य देवेशि ! पशोः कुत्सित-जन्मनः।
पापौघोऽन्तिकमायाति, पुण्यं दूरं पलायते॥
तस्माद् यत्नेन दीक्षैषा, ग्राह्यो कृतिभिरुत्तमा। (रुद्र-यामल)

अदीक्षितानां मर्त्यानां, शृणु देवि महेश्वरि !
अन्नं विष्ठा-समं तस्य, जलं मूत्र-समं स्मृतम्॥
तत्कृतं तस्य वा श्राद्धं, सर्वं संयात्यधो-गतिम्। (मत्स्य-सूक्त)

इस प्रकार के बहुत से वचन हैं, जिन सभी का सन्निवेश इस छोटे से लेख में नहीं हो सकता। किन्तु ये वचन भी 'दीक्षा' के महत्त्व को प्रकट करने में अपर्याप्त नहीं हैं। इन वचनों को देखने से साफ-साफ ज्ञात होता है कि अदीक्षित रहना परम अकल्याणकर है और बिना 'दीक्षा' हुए आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ नहीं हो सकता।

दीक्षा-विवेचना

'दीक्षा' अर्थात् मोक्ष-मार्ग में व्रती बनाने का संस्कार

'परा' और 'अपरा' विद्या का निरूपण करते हुए 'मुण्डकोपनिषत्' में कहा गया है कि 'अपरा'-विद्या 'वेद-त्रयी' और उसके अङ्ग आदि हैं तथा 'परा'-विद्या—'परा - तत्त्व' का साक्षात्कार कराने तथा 'मोक्ष'-प्राप्ति का हेतु होती है। इसका प्रधान विषय ज्ञान तथा साधन द्वारा 'जीवत्व - दोष' से विमुक्त करना एवं 'स्व'-स्वरूप की प्राप्ति है।

अनन्त-कोटि-जन्मों के पुण्य-सञ्चय से, 'अपरा'-विद्या द्वारा जनित भोगों से विमुख होकर जीव भगवत्-प्रेरणा से 'परा'-विद्या-विषयक परिचय प्राप्त करने को (कुतूहल-वश अथवा कोई मर्मान्तिक आघात आदि से उत्पन्न विरक्ति के कारण) उत्सुक होता है, उस समय उस मुमुक्षु को 'मोक्ष-मार्ग' में व्रती बनाने के संस्कार को "दीक्षा" कहते हैं।

'दीक्षा' अर्थात् दिव्य-ज्ञान द्वारा पाप से विशुद्धि प्राप्त करना

"दीक्षा" शब्द 'दी' + 'क्षा' दो अक्षरों से बना है। 'आगम' उसकी साधारण-सी व्याख्या—'दिव्य ज्ञान द्वारा पाप से विशुद्धि प्राप्त करना'—इन शब्दों में देते हैं (गन्धर्व तन्त्र)—**दिव्य - ज्ञानं यतो दद्यात्, कुर्यात् पाप-क्षयं यतः।**

'गीता' भी ऐसा ही सङ्केत करती है—'**ज्ञानाग्नि-दग्ध-कर्माणम्**।'

अर्थात् शुभाशुभ कर्मों का ज्ञानाग्नि में भस्म होना अथवा शुभाशुभ कर्म निःशेष होने से मनुष्य स्वतः मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। जिस प्रकार निर्मल सरोवर में स्थित शिला पङ्क के अन्तर्हित होते ही दृष्टि-गोचर हो जाती है, उसी प्रकार 'दीक्षा' द्वारा कर्म-रूपी पङ्क हट जाने से स्व - स्वरूप की प्राप्ति होती है। पर 'गीता' के अनुसार—'**नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म-कृत्**'।

अर्थात् कर्म-रहित अवस्था असम्भव है। किस प्रकार कर्म-हीन बना जाय? यह 'दीक्षा' द्वारा ही साध्य है। 'दीक्षा' सृष्टि के विकास की विलोम-क्रिया है। जन्म-दाता पिता द्वारा शुभाशुभ कर्म-डोर से ग्रथित शरीर 'दीक्षा' द्वारा समस्त कर्म-ग्रन्थियों सहित संहृत हो जाता है।

'दीक्षा' अर्थात् अपूर्व 'श्रद्धा' का आदान तथा पूर्ण विश्वास का प्रदान

श्रद्धा तथा विश्वास का अपूर्व सम्मिलन ही 'दीक्षा' का मधुर स्वरूप है। अपूर्व श्रद्धा का आदान तथा पूर्ण विश्वास का प्रदान हो, गुरु शिष्य को 'दीक्षा' द्वारा एकता के सूत्र में अथवा अर्ध - नारीश्वर-स्थिति में युक्त करता है ('आगम' का कथन है कि 'आज्ञा-चक्र-भेद' के बाद गुरु-शिष्य-नाता अन्तर्हित हो जाता है)। अटूट श्रद्धा से ही गुरु-वरण किया जाता है और गुरु-शिष्य को परम विश्वास (वि + श्वास = श्वास - रहित) के सर्वोच्च शिखर—'समाधि' में स्थित कर देते हैं। इन्हीं आदान - प्रदानों का योग 'दीक्षा' है।

'दीक्षा' अर्थात् बोध-मय शक्ति-रूपी सार-पदार्थ की प्राप्ति

'ईशोपनिषद्' का प्रथम सूक्त—**'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्'** के अनुसार नाना क्रियाओं, दीक्षा आदि की आवश्यकता नहीं है; परन्तु उपनिषद् का यह ज्ञान जीव को 'बोध-मय ज्ञान' की स्थिति प्राप्त कराने में असमर्थ है अर्थात् शक्ति-रहित है। यह 'बोध-मय शक्ति' तो केवल 'दीक्षा' ही से प्राप्त हो सकती है।

वास्तव में कर्म-व्यतीतावस्था के निकट होने पर, थकी हुई जीवात्मा को चिर-विश्रान्ति देने के लिए, स्वयं शिव जीवात्मा में 'स्व-प्रेरणा' से 'भोग-विरक्ति' द्वारा 'स्व-स्वरूप-प्राप्ति' के निमित्त विद्या, शास्त्र आदि में नियोजित करते हैं। उचित भूमिका प्राप्त करने पर 'दीक्षा-विधान' द्वारा उस 'नान्यः' स्वरूप की प्राप्ति कराते हैं, जिसका उल्लेख 'सप्तशती' इस प्रकार करती है—**'विद्यासु, शास्त्रेषु विवेक-दीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्याः ?'** (११,३१)

बोध-मय ज्ञान देने में 'शास्त्र' उसी प्रकार विफल हैं, जैसे कि नाव मिलने पर भी केवट बिना पार जाना असम्भव है। शास्त्रों का विषय अपरिमित है। उस पर अन्धों का सा अन्वेषण गहन, तर्क-युक्त है। शास्त्रों का अनुशीलन करने के उपरान्त मार्ग-निर्धारण करना दुष्कर तथा कष्ट-साध्य है। सारांश में, शास्त्र अवलोकन में ही आयु के व्यतीत हो जाने की सम्भावना है। इसलिए शास्त्र स्वयं सार-पदार्थ—अर्थात् 'दीक्षा' प्राप्त करने की ओर सङ्केत करते हैं।

दीक्षा अर्थात् तपस्या

'तपस्या' भी 'दीक्षा' = 'आत्म-संस्कार' प्राप्त करना ही है, इसके अनन्तर शिष्य को कुछ करना नहीं पड़ता। स्वयं 'दीक्षा', यदि कुछ कार्य अवशेष रह गया हो, तो उसे स्वतः में सम्पादन करती है। जैसे 'कबीर' लिखते हैं—**'राम हमारा काम करे, हम बैठे आराम।'**

अर्थात् स्वयं 'तपस्या' की जरूरत नहीं, केवल सोई-बैठी अवस्थाओं में 'दीक्षा' द्वारा, 'मध्यमा' का उदय हो जाने से, वह स्वयं 'जप-यज्ञ' (**यज्ञानां जप-यज्ञोऽस्मि**) को निरन्तर सम्पादन करती रहती है। इस प्रकार 'दीक्षा' द्वारा प्राप्त यत्-किञ्चित् चिनगारी भी यथा-समय में जीव के स्थूल, सूक्ष्म, कारण कर्म, वासना, अज्ञान आदि को "स्व-अग्नि" द्वारा भस्म कर 'शिव-सायुज्य' की प्राप्ति कराती है।

'दीक्षा' की विवेचना हेतु सृष्टि का विवरण जानना आवश्यक

उपर्युक्त कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है, इसके लिए 'सृष्टि - तत्त्व' का पूर्ण अनुशीलन करना परमावश्यक है क्योंकि इस क्रम का पूर्ण शास्त्रीय अनुसन्धान किए बिना इसके विलोम—'संहार - तत्त्व' अर्थात् 'दीक्षा' की विवेचना करना नितान्त असम्भव है। सृष्टि शुभाशुभ कर्मों पर अवलम्बित है—**'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।'** (रामायण)

अगर कर्म ही न रहे, तो भोगेगा कौन ? अतएव 'आगम' 'सृष्टि का विवरण' तथा 'कर्म का उदय' निम्न प्रकार से वर्णित करते हैं—

आगमोक्त सृष्टि—विवरण

'सृष्टि' के पूर्व नाम-धामादि-हीन 'पर-तत्त्व' का सङ्केत केवल मात्र 'आनन्द' शब्द के अन्तर्गत है। इस परातिऽपरा स्थिति में यह सर्व-प्रथम तत्त्व अथवा 'आद्या'—"वाचातीता परा-कला" स्वयं 'परा-नन्द-स्वरूप स्वानन्द' में लीन थी। इस केवलानन्द पदार्थ के नाम, धाम, रूप, लिङ्ग आदि से क्या प्रयोजन ? यह केवल 'परा-सम्वित्' की पूर्ण स्वानन्द-विश्रान्ति है।

'सृष्टि-सङ्कल्प' की स्फुरणा से पूर्वोक्त 'आद्य तत्त्व' से शून्य-रूप प्रतिबिम्ब महा - काल, छाया-स्वरूप मानसिक शिव, शव-रूप में आविर्भूत हुए। परा-तत्त्व इस शवाधार पर ही मुक्त क्रीडा में रहा। आदि-नाथ महा-काल आद्या के स्व-सङ्कल्प—"सृष्टि-सङ्कल्प"-रूप चैतन्य से क्रीडा में संलग्न हुए। इसी क्रीडा में 'अमा' से क्रमशः 'पूर्णिमा' प्राप्त होती है।

आदि शिवांश (कामेश्वर शिव = शिव की पृथक् स्वतन्त्र स्थिति) से सृष्टि - इच्छा - युक्त पर-शिव तथा उसकी इच्छा—सङ्कल्प-रूप-शक्ति-तत्त्वों का पृथक् रूप से आविर्भाव-कर्म ही शिव-शक्ति विभाग का आदि है। यथार्थ में 'शिव-शक्ति-तत्त्व' एक ही हैं। बहिर्मुख 'शिव-तत्त्व' ही अन्तर्मुख होने पर 'शक्ति-तत्त्व' कहलाता है, पर यह भेद-सा प्रतीत होना कर्म-जन्य उपाधि कहलाती है।

वास्तव में जब स्वयं महा-काल की ही स्थिति छाया-मात्र मानसिक है, तो उनसे उद्भूत हुए आदि शिव (कामेश्वरादि) की वास्तविक स्थिति कहाँ हुई? उपर्युक्त 'शिव' और 'शिव-तत्त्व' स्वयं अपनी स्थिति पूर्ण संहार तक बनाए रहते हैं। इनके बहिः - अंश भूत - तत्त्व भी इसी प्रकार उत्तरोत्तर विकास प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार पूर्वोक्त तत्त्वों का बहिः-आंशिक सम्मिलन - रूप (हंसः) साम्य - रसात्मक आनन्द, ब्रह्माण्ड तथा तत्-स्वरूप पिण्डाण्ड-रचनाभिमानी प्रभु-रूप 'सदा-शिव-तत्त्व' उत्पन्न हुआ। इनकी ममत्व-रूप-सृष्टि-रचनात्मक वृत्ति ही 'विद्या-तत्त्व' बनी तथा सदा-शिव का बहिः-अंश (हकारांश) ही विश्वाधार 'ईश्वर-तत्त्व' बना। एवं विकासोन्मुख ईश्वर की वृत्ति विद्या-तत्त्वांश की बहिः-अंश 'माया - तत्त्व' में 'ह' और 'स' कार पूर्ण-रूपेण भिन्न-भिन्न हो गए।

(१) 'शिव-शक्ति'-विभाग को ही सृष्टि का प्रथम कर्म-रूप 'कार्मण मल' अथवा 'शिवोपाधि' कहते हैं और सृष्टि के विकास का यही मूल है। 'आगम' - कथन है—"शिव - शक्ति - विभागेन जायते सृष्टि-कल्पना।"

अर्थात् शिव और शक्ति-तत्त्व के प्रथकीकरण से सृष्टि का आरम्भ हो गया (केवल ज्ञान-भूमिका में कल्पना-रूप से)। 'आगम' (गन्धर्व तन्त्र) का वचन है—

सङ्कोचश्च विकाशश्च, 'ह-स'—इत्यक्षर-द्वयम्।
सङ्कोचः परमा शक्तिः, विकासः परमः शिवः।

अर्थात् सङ्कोच और विकास रूप दो अक्षर 'ह-स' (सदा-शिव) में 'स'—सङ्कोच-रूप परम शक्ति है, 'ह'—विकास-रूप परम शिव है। इन दो अक्षरों के टूटने पर 'ईश्वर-तत्त्व' का प्रगट होना 'शिव-तत्त्व' का पूर्ण विकास है। जहाँ 'शिव-तत्त्व' विकासोन्मुख है, वहाँ 'शिव - शक्ति' में उत्तरोत्तर सङ्कोचकत्व आ रहा है, अर्थात् पूर्वोक्त 'शिव-शक्ति' सङ्कोच को प्राप्त होकर क्रमशः 'सद्विद्या-तत्त्व' तथा 'विद्या - तत्त्व' संकुचित हो 'माया-तत्त्व' बन गया। 'पूर्ण दीक्षा' के प्रथम वाक्यानुसार यही प्रथम कर्म-रूप ज्ञानाभ्यास का मूल है।

(२) पूर्वोक्त 'माया-तत्त्व' ही मायाऽधिपति ईश्वर, मायोपाधि से आक्रान्त हो अपने सहज ऐश्वर्य को सर्वज्ञत्व, सर्व - कर्तृत्व, सर्व - तृप्ति, नित्यत्व, स्वातन्त्र्य को माया - तत्त्व के बाह्यांश - जनित पञ्च-कञ्चुकों—१ अविद्या, २ कला, ३ राग, ४ काल, ५ नियति—द्वारा अपहृत कराकर 'पुरुष-तत्त्व' में प्रतिष्ठित होता है—

कञ्चुकितः शिवो जीवो, निष्कञ्चुकः सदा-शिवः । (गन्धर्व तन्त्र)

अर्थात् माया-जन्य कञ्चुकों से आक्रान्त शिव जीव हो गया, कञ्चुकों से मुक्त होने पर वही शिव है। 'आगम' वचन है—"माया-गृहीत-सङ्कोचः शिवः पुंस्तत्त्वमुच्यते ।"

अर्थात् माया के सङ्कोचत्व से शिव 'पुरुष-तत्त्व' में परिणत हो गया।

'माया-तत्त्व' का सङ्कोचत्व ही—१ राग, २ अविद्या, ३ कला, ४ काल, ५ नियति तत्त्वों को सृजित करता है। इन अविद्यादि पाँच तत्त्वों से 'ईश्वर - तत्त्व' के ऐश्वर्य अनैश्वर्य्यों—१ अज्ञता, २ अल्प-कर्तृत्व, ३ अनित्यत्व ४ अल्प-तृप्ति एवं ५ बन्धन में परिणत हो जाते हैं।

इस प्रकार 'मायोपाधि' के ही द्वारा 'ईश्वर' स्वयं जीव-तत्त्व बनते हैं और अपने ऐश्वर्य के नष्ट होने से सर्वदा उसकी प्राप्ति में गति - शील रहते हैं। यही द्वितीय 'मायिक मल' अथवा विद्याभ्यास कहलाता है।

(३) उपर्युक्त 'पुरुष-तत्त्व' सूक्ष्म व्यापार है। 'माया - तत्त्व' अपने बाह्यांश 'प्रकृति - तत्त्व' में उत्पन्न हो विकासोन्मुख 'पुरुष-तत्त्व' पर आक्रमण करता है, 'आगम' (नील तन्त्र) कहते हैं—"प्रकृत्या क्रियते कर्म, साक्षी पुरुष उच्यते ।"

इस पुरुष-रूपी आधार पर प्रकृति का नृत्य ही विकास की इच्छा को पूर्ण करता है। प्रकृति सत, रज, तम गुणों की साम्यावस्था है। पुरुष के संयोग से यही सतोवस्था में बुद्धि, रज में मन तथा तमोऽवस्था में अहङ्कार-तत्त्व उत्पन्न करती है। सृष्टि में शिव-तत्त्व के बाह्यांश विकास-वर्ती होते हैं तथा शक्ति-तत्त्व के बाह्यांश सङ्कोचत्व को प्राप्त हो शिवोपाधि, मायोपाधि एवं प्रकृति - जन्योपाधि से रूपान्तरित हो रहे हैं, पर अन्तर-अंशों से अपनी - अपनी स्वतन्त्र स्थिति में पूर्ण संहार तक तात्त्विक - रूप से स्थित रहते हैं।

प्रकृति के सङ्कोचत्व से विकास के निमित्त स्थूल-तम अवस्था प्राप्त करने को पञ्च-तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा तत्-जन्य स्थूल-तत्त्व–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश तथा इनके अनुभव एवं कर्म-व्यापार-निमित्त पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय–त्वक्, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण तथा चक्षु और पञ्च-कर्मेन्द्रिय–वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ बनते हैं।

इन २४ तत्त्वों से युक्त पुरुष जीव-संज्ञा को प्राप्त होता है और अज्ञान, नानात्व तथा अपूर्णता का अनुभव करता है। यही तीसरा मल 'आणव मल' कहलाता है। इससे स्थूल देहाभास प्रतीत होता है।

इस प्रकार ३६ तत्त्व सृष्टि के तात्त्विक विकास का क्रम - निरूपण करते हैं। वस्तुतः मूल चैतन्यांश पर सम्वित् ही शिवांशारूढ हो कर्म, माया तथा जड़ प्रकृति द्वारा जीव बनता है, जैसा कि 'आगम'-वचन है—'व्यक्तो भवति देवेश ! स्वयमात्मा स्वयं-भुवः ।'

'दीक्षा' अर्थात् सदा-शिव की अनुग्रह-शक्ति द्वारा जीव का उद्धार

उपर्युक्त 'सृष्टि-क्रम' ही ब्रह्माण्ड को अथवा पिण्ड को तीन दोषों से युक्त कर उद्भव करता है। 'महा - काल' की ही प्रेरणा से 'सदा - शिव' ममत्व-युक्त करुणा से उस (पिण्ड) का अपनी 'अनुग्रह-शक्ति' द्वारा उद्धार करते हैं। यह अनुग्रह अथवा 'कृपा' ही 'शक्ति-पात' कहलाती है। मलों की निवृत्ति होने पर जीव (पुरुष) क्रमशः तीन अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

पहली अवस्था—जड़ 'आतम-तत्त्व' की शुद्धि द्वारा 'पुरुष-तत्त्व' की प्राप्ति है। दूसरी माया-जनित कञ्चुक-निवृत्ति है अर्थात् 'विद्या-तत्त्व' के शुद्ध होने पर 'ईश्वर-तत्त्व' की प्राप्ति होती है। तीसरी

अवस्था कर्म-जन्य 'शिव-तत्त्व' के शुद्ध होने पर 'सम्विदग्नि' में प्रवेश की है। इस प्रकार विलोम कर्म से मोक्ष प्राप्त होता है।

'शिव-तत्त्व'—'**कारण शरीर**' में 'शिवोपाधि' द्वारा 'कार्मण मल' अर्थात् '**ज्ञानाभास**' (उपनिषत् के वचनों में '**अज्ञानं ज्ञानं**') 'अज्ञान-बोधक ज्ञान' उत्पन्न करता है। 'विद्या-तत्त्व'—'**सूक्ष्म शरीर**' में माया-जनित '**भेदाभास**' से "**अनित्यं**" अर्थात् अनित्य (भेद) पदार्थ को नित्य - वत् प्रतीत कराता है। 'प्रकृति-जन्य उपाधि' द्वारा जड़ 'आत्म-तत्त्व'—देहाभास-वश "**अधर्म इव धर्मः**" अर्थात् जो वास्तविक स्वभाव नहीं है (अपूर्णत्व), उसको स्वभाव बना देता है।

इसका विलोम प्रकृति-जन्य अपूर्णत्व 'मायोपाधि' में अन्तर्हित हो तथा मायोपाधि-जन्य 'भेदा-भास', 'शिवोपाधि' में तथा शिवोपाधि-जन्य 'कर्तृत्वाभिमान'—'पर - सम्वित्' में लय होना ही है। इस 'संहार-विलोम' क्रिया का वर्णन 'आगम' इस प्रकार करते हैं—

'उपाया बहुधा सन्ति, ज्ञातुं ब्रह्म सनातनम्। तथापि प्रकृतेर्योगात्, क्षिप्रं प्रत्यक्षतां व्रजेत्।'

अर्थात् 'ब्रह्म-ज्ञान' के अनेक उपाय हैं, तथापि सृष्टि के जो हेतु-भूत हैं, उन्हीं के द्वारा शीघ्र अनुभूति होती है।

'दीक्षा' का अर्थ ही 'संहार' है। 'सदा-शिव' अनुग्रह - पूर्वक (कर्म - शेष) जीव में तीव्र वैराग्य उत्पन्न कर, शास्त्राध्ययन आदि में डालते हैं, फिर यथा-समय योग्य गुरु द्वारा 'शक्ति-पात'—'दीक्षा' प्रदान कराते हैं। 'शक्ति - पात' अति अल्प मात्रा में भी होने पर साधक का पूर्ण उद्धार किए विना शान्त नहीं होता। उसके थोड़े से लक्षण निम्न प्रकार हैं—

देह-पातस्तथा कम्पः परमानन्द-हर्षिणौ। स्वेदो रोमाञ्चः इत्येतच्छक्ति-पातस्य लक्षणम्।

'दीक्षा' अर्थात् 'शक्ति-पात' के भेद

यह 'देह - पात', 'देहाभास-मल' की शुद्धि का आरम्भ एवं जन्म - जन्मान्तर-स्थित 'मायोपाधि' द्वारा जन्य वासनाओं का कम्पन है तथा तब 'कर्म-मलादि' सोच लेते हैं कि यह जीव हमारे हाथ से गया। अन्तर-स्थित 'सद्-विद्या' आदि तत्त्वों के आनन्द का अवसर ही 'शक्ति-पात' का परमानन्द है। 'शक्ति-पात' कई प्रकार का होता है। इसकी मात्रा साधक की योग्यता पर निर्भर है और इसी योग्यता के कारण 'दीक्षा' के भिन्न-भिन्न भेद हैं, जिनकी समुचित आलोचना के लिए यन्त्र तथा मन्त्र एवं इनके द्वारा 'सृष्टि-क्रम' का अध्ययन करना आवश्यक है। उपर्युक्त 'तात्त्विक' 'सृष्टि-क्रम' के ही अनुरूप यन्त्र तथा मन्त्र के 'सृष्टि-क्रम' आगमों में वर्णित हैं। 'कथा-तत्त्व' को पृथक् करके 'यान्त्रिक सृष्टि' का विवरण निम्न-लिखित प्रकार से प्रतीत होता है—

'क्रम-दीक्षा' का विवेचन

'आद्य तत्त्व' का निरूपण 'आगम' इन शब्दों में करते हैं—

'महा-निर्गुण-रूपा च, वाचातीता परा कला।'

अर्थात् 'आद्य - तत्त्व' कथा - रूपेण जिनकी स्थिति, अष्ट श्मशान-परिवृत्त महा - श्मशानोपरि चिताग्नि-मध्य-स्थित प्रेतोपरि आदि है, उपर्युक्त सभी विशेषण परम शून्याति-शून्य स्थिति के बोधक हैं। 'आगम'-वचन है—

शून्ये ब्रह्माण्ड-गोले तु पञ्चाशच्छून्य-मण्डले । पञ्च-शून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता ।।

यहाँ 'चिता' 'सम्विदग्नि' को इङ्गित करती है । अतः इस 'आगम'-वचन से स्पष्ट होता है कि सर्व-प्रथम परानन्द-लीन अवस्था में 'सृष्टि-सङ्कल्प' की स्फुरणा से महा-काल स्व-बिम्ब - रूप 'मानसिक शिव' आविर्भूत हुए—

'तद्-बिम्बं तु भवेन्माया, तत्र मानसिकं शिवं' (शक्ति-सङ्गम)

तब इच्छा-शक्ति-रूप 'स्व-सङ्कल्प' को 'स्व-चैतन्य-प्रदान' पूर्वक निर्माण किया गया ।

महा-काल शिव, सङ्कल्प-रूप आद्या की 'इच्छा-शक्ति', शव-भाव से आद्या की 'आनन्द-क्रीडा' में लीन रहा । 'आगम' रहस्य-वाक्य देता है (कुलार्णव तन्त्र)—

'केचित् तु द्वैतमिच्छन्ति, केचिदिच्छन्ति चापरे । मम तत्त्वं विजानन्तो, द्वैताद्वैत-विवर्जितः ।'

इस अनन्त 'क्रीडा-तृप्ति' से 'परम निवृत्ति-रूप' ब्रह्म-मयी द्वितीया में क्षोभ - रहित महा - काल 'महा-कारण तत्त्व'-रूप से परम स्थान में स्थित हुए । साथ ही सृष्टि-विकासार्थ स्व-अंश के सङ्कोचत्व से महा-काल, सम्मोहनार्थ एवं शिव को सृष्टि में नियोजित करने के हेतु 'सुन्दरी-रूप' से शून्य में स्थित हुआ और महा-कालांश 'कामेश्वर'-रूप से पृथक् स्थिति को प्राप्त हुए । 'उपनिषद्'-वचन है (भावनोपनिषत्)—

'निरुपाधिक-सम्विदेव कामेश्वरः ।'

यही अमा से पूर्णिमा की ओर विकास है । तदनुसार ही 'आद्या यन्त्र' तथा 'द्वितीया यन्त्र' केवल 'शक्ति-त्रिकोण'-युक्त हैं (शिव-त्रिकोणाङ्कित यन्त्र गौण हैं), पर 'श्री - यन्त्र' सृष्टि-विकास-रूपी 'शिव-शक्त्यात्मक' त्रिकोणों से युक्त है । इस 'श्री-यन्त्र' स्थित 'महा-विन्दु' में अर्थात् 'सर्वानन्द - चक्र' में 'आगम' सुन्दरी का वर्णन इस प्रकार करता है (गन्धर्व तन्त्र)—

'सम्विद्-वेद्यं महा-चक्रं ज्ञेयं ब्रह्म-स्वरूपकं, तत्-पर-शिवाङ्कस्थ-महा-त्रिपुर-सुन्दरीम् ।'

यहाँ पर शिव-शक्ति का सृष्टि-कार्यार्थ, विभाग-कार्य अंकुरित हो जाता है ।

यहाँ विन्दु-चक्र-स्थित त्रैपुर-नायिका 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी' कहलाती है । 'त्रैपुर' शब्द सृष्टि के तीन विकासों की ओर सङ्केत करता है अर्थात् **१ शिवोपाधि, २ मायोपाधि** तथा **३ प्रकृति - जन्योपाधि, जिनसे प्रपञ्चात्मक** सृष्टि पूर्ण विकास को प्राप्त हुई ।

रागात्मक रक्त-कमलासीना, रक्ताम्बरा 'श्री विद्या' पाश (दृढ़ बन्धन), पञ्च-बाण-युक्त इक्षु-धनु (कामास्त्रों) तथा महा-अंकुश (रोधनी-शक्ति) धारण किए हुए हैं । किसकी सामर्थ्य है कि इनसे बच सके (भक्त की बात दूसरी है) ? इतने नियन्त्रण से कौन पार पा सकता है—

'बलादाकृष्य मोहाय, महा-माया प्रयच्छति । (सप्तशती) ।

पूर्वोक्त तीन विकासों की त्रि-भूमिका रूप कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भग-मालिनी 'महा-विन्दु' की पृथक्-पृथक् रूप से 'त्रिपुर' की अधिष्ठात्री बनीं । मूल 'महा-विन्दु' से इच्छादि-शक्ति-रूप 'त्रिकोण' ही 'त्रिपुर' हैं, जो मध्य विन्दु के प्रतिबिम्ब-स्वरूप, अक्षर-रूप (वर्णाक्षर-रूप), मातृका-रेखा द्वारा बनते हैं ।

मूल 'महा-विन्दु' तथा शक्ति-श्रृङ्गार के सङ्घर्ष से अर्थात् कर्मात्मक शिवोपाधि द्वारा चार शिव - त्रिकोण तथा चार शक्ति - त्रिकोणों (१ पर - शिव, २ सदा-शिव, ३ ईश्वर तथा ४ पुरुषात्मक—कामेश्वर) (१ विकास एवं परा-शक्ति, २ सद्-विद्या, ३ माया तथा ४ प्रकृति-शक्ति-सङ्कोचात्मिका शक्ति-भग-मालिनी) का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार 'कार्मण मल'-युक्त 'ज्ञानाभास' इस त्रिकोण के पूर्ण विकास का हेतु हुआ, पर यह कर्म भी केवल अज्ञानात्मक ज्ञान की तात्त्विक स्थिति-रूप कारण की भूमिका है ।

त्रिकोण - स्थिति मातृका, वज्रेश्वरी द्वारा गति - शील 'मायोपाधि' में परिणत होती है और तदनुसार मातृका-वृत्त 'विद्या-तत्त्व' द्वारा भेदात्मक दोष - युक्त पूर्वोक्त 'शिव - तत्त्व' को पूर्णतया आवृत्त करता है। तत्-जनित अष्टार, षोडशार-स्थित योगिनियाँ अष्ट-पाशादि, निद्रा-तृष्णादि कञ्चुकों से ईश को आक्रान्त कर 'पुरुष-तत्त्व' में परिणत करती हैं। यही 'भेदाभास' 'माया-मल' है।

अन्त में इच्छा-शक्ति कामेश्वरी-जनित जड़ प्रकृति (त्रि-गुण युक्त) 'पुरुष - तत्त्व' से युक्त होकर भू-पुर में श्री-यन्त्र के अन्तिम त्रैलोक्य-मोहन चक्र में, ब्रह्मा, विष्णु, शिव-जनित मन, बुद्धि, अहङ्कार, अग्नि, वरुणादि-जनित सूक्ष्म तन्मात्रा एवं स्थूल पञ्च-महा-भूत तथा इन्द्र-जनित पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय एवं पञ्च-कर्मेन्द्रिय-युक्त विकास की पूर्णता को पहुँचा देती हैं।

इस प्रकार कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भग-मालिनी कृत कारण 'शिवोपाधि' क्रमशः सूक्ष्म अन्तर वृत्ति-रूप 'मायोपाधि' में तथा स्थूल वहिर्वृत्ति-रूप 'प्रकृति-जन्योपाधि' में कामेश्वर शिव स्वयं ही परि-वर्तित हो जाते हैं। यह ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड का चित्र रेखा-रूप में 'यन्त्र' कहलाता है।

'विलोम-क्रम' से स्थूल 'भू-पुर' अन्तर सूक्ष्म-वृत्त में, सूक्ष्म-वृत्त कारण-'त्रिकोण' में तथा कारण-त्रिकोण महा-कारण-'विन्दु' अर्थात् 'श्री-विद्या' में एवं महा-विन्दु पञ्च - शून्य - स्थित 'द्वितीया' में तथा सर्वान्त में 'आद्या-तत्त्व' में लीन होना ही 'कैवल्य मुक्ति' कहलाती है। अन्य मुक्तियाँ गौण हैं। दूसरे प्रकार से, स्थूल 'जीव'-रूप मूलाधार-स्थित चतुरस्र, सूक्ष्म अष्टार-स्थित 'ईश्वर' में तथा अष्टार - स्थित 'ईश्वर', 'आज्ञा'-स्थित त्रिकोण में तथा 'आज्ञा'-स्थित त्रिकोणस्थ 'पर-शिव', 'पर-सम्विद्' एवं 'महा-विन्दु' का 'अकुलादि' में लीन होना ही लयात्मक पूर्ण संहार है। इसीलिए 'क्रम-दीक्षा' परमावश्यक है।

'श्री बाला' दीक्षा अर्थात् 'घट'-शुद्धि एवं 'श्री श्रीविद्या' दीक्षा अर्थात् ऊर्ध्व-गति की प्राप्ति

'शिव-तत्त्व' का विकास पूर्ण होने पर वह जीव - तत्त्व में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार 'शक्ति-तत्त्व' पूर्ण संकुचित हो अन्त में 'कुण्डलिनी'-रूप से चिर-निद्रा में निद्रित हो जाता है। 'वेदान्त' वचन है—'**देवात्म-शक्तिः। स्व-गुणे निर्गुणा भवेत्।**'

सारांश यह कि 'कुण्डलिनी' की निद्रा भङ्ग किए बिना 'मुक्ति - मार्ग' प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए 'क्रम-दीक्षा' सर्व-प्रथम घट-शुद्ध्यर्थ 'श्रीबाला दीक्षा' का निर्देश करती है। तत्पश्चात् 'श्री-क्रम' एवं 'श्री विद्या' का जिससे पिण्डाण्ड में ऊर्ध्व-गति प्राप्त होकर 'परा - विन्दु' की प्राप्ति हो। बिना 'श्री-विद्या' के 'दीक्षा', दीक्षा ही नहीं है।

उपनिषद् कहता है—**स शोकं तरति। सशोकं तरति, सशोकं तरति।** अर्थात् स्व-भाव को प्राप्त होना, तभी शोक-रहित विशोका अवस्था प्राप्त हो सकती है। इसके उपरान्त पञ्च-शून्यावरोहण के लिए 'द्वितीया-क्रम' तथा कैवल्यार्थ 'द्वितीया-दीक्षा' होती है। बिना 'श्री-क्रम' पूर्ण किए, इन क्रमों का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। अन्त में, 'श्री आद्या - क्रम' से तदनुभूति रूपात्मक अभेद-स्थिति तथा 'श्री आद्या-दीक्षा' 'अमृत-तत्त्व' प्राप्ति-पूर्वक पूर्ण लयात्मक स्थिति प्राप्त करने का सौभाग्य भाग्य-वान् साधक प्राप्त करते हैं। अन्य विद्याएँ, 'प्रयोग-विद्या' हैं।

'क्रम-दीक्षा' के भेद

यहाँ 'क्रम' का विषय प्रसङ्ग - वशात् संक्षेप में कहा गया है। इसके अनेक भेद हैं, जैसे—'मेधा-दीक्षा', 'साम्राज्य मेधा', 'दिव्य साम्राज्य मेधा' और 'दिव्य साम्राज्य परमेष्ठी'। 'षडाम्नाय' आदि 'दीक्षा' भी उपर्युक्त क्रम के भेद हैं, जिनके अन्तर्गत 'यान-सम्प्रदाय' आदि से अनेक भेद पड़ते हैं। क्रम के

विस्तार की ओर जाने से लेख का विस्तार बहुत बढ़ जाएगा। अतएव प्रस्तुत 'दीक्षा - विवेचन' नामक विषय पर विचार करना आवश्यक है।

आणव, मायिक तथा कार्मल-मल की निवृत्ति हेतु 'दीक्षा' की अनिवार्यता

यहाँ उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्व-आम्नायोक्त द्वार से भू-पुरादि स्थित देवता अथवा चक्र-नायिका 'कामेश्वरी' का अनुग्रह प्राप्त होने से 'आणव-मल' नष्ट होता है। 'वज्रेश्वरी' की कृपा से 'मायिक-मल' तथा 'भग-मालिनी' द्वारा 'कार्मण-मल' निवृत्त हो, मनुष्य परा-तत्त्व-लीन हो जाता है। इस उपासना के लिए अधिकार प्राप्त करने हेतु 'दीक्षा'-विधान अनिवार्य है।

'दीक्षा' से किस प्रकार 'मोक्ष-मार्ग' प्राप्त किया जाता है, यह तभी स्पष्ट होगा जब कि मन्त्र का तथा 'स्थूल-देह' का आगमोक्त विवरण देखा जाय।

'स्थूल-देह' का आगमोक्त विवरण

प्रथम, 'देह' को लीजिए। 'आगम' तीन प्रकार के शरीर का वर्णन करते हैं। प्रथम 'स्थूल', द्वितीय 'सूक्ष्म' एवं तृतीय 'कारण' देह। परा-तत्त्व-रूप चैतन्य, महा-कारण - रूप 'सहस्रार - चक्र' की कर्णिका पर 'पर-विन्दु' रूप से स्थित है। इससे अकुल, महा - विन्दु, उन्मना, समना, व्यापिका, शक्ति, नादान्त, नाद, रोधनी, अर्ध-चन्द्र तथा विन्दु द्वारा क्रमशः 'आज्ञा-चक्र'-स्थित 'त्रिकोण' बना तथा उससे 'अनाहतस्थ' वाण-लिङ्गोपरि 'अष्टार' एवं 'मूलाधार'-स्थित 'चतुरस्र' वन कर ही पूर्वोक्त यन्त्र से सादृश्य दिखाते हैं। अन्य 'विशुद्ध' चक्र आदि 'आज्ञा-चक्रस्थ' 'त्रिकोण' तथा 'अनाहत', 'मणिपुर' आदि अष्टार को पूरा करते हैं।

मूलाधारस्थ तत्त्व, जो सुषुम्णा (गुप्त - मार्ग) से बहिः स्थित हैं अर्थात् इन्द्रादि इस 'स्थूल-देह' का विकास करते हैं। मूलाधारस्थ 'चतुरस्र' ही 'पूर्ण वहि-र्वृत्ति' का स्वरूप है। इसके चार द्वार ही पूर्ण वहि-र्वृत्ति स्वरूप 'वेद' हैं।

'सुषुम्णा' के भीतर होने से, जहाँ शिव-शक्त्यात्मक चक्र हैं, अन्तर-वृत्ति-रूप कारण-शरीराश्रय मार्ग—'शाम्भव-मार्ग' कहलाता है (गुप्त-कुल-वधू)।

जब ब्रह्म-रूपिणी शक्ति 'मूलाधार' में पूर्ण सङ्कोचत्व को प्राप्त हो, मोक्ष - मार्ग 'सुषुम्णा' के अवरोधपूर्वक चिर-निद्रित होती है, तब पशु-पति 'शिव', पूर्ण 'पशु-रूप' में अवतीर्ण होते हैं। संक्षेप में स्वयं 'आद्या' ही, 'शिव'-आश्रय लेकर 'श्रीविद्या' बनकर सृष्टि का विकास पूर्णत्व की ओर ले जाती हैं।

'दीक्षा' अर्थात् पशु-रूप शिव को साक्षात् शिव बनाने की 'विलोम क्रिया'

शरीर-रूपी पशु-रूप 'शिव' को 'सहस्रार'-स्थित 'पर-विन्दु' में स्थित करने के लिए जो विलोम क्रिया की जाती है, वह 'दीक्षा' कहलाती है। इसका 'मन्त्र' 'मूल-मन्त्र' कहलाता है। 'मन्त्र' की परिभाषा 'आगम-शास्त्र' निम्न प्रकार से देता है (रुद्रयामल)—

तम-परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते, एवं सय्योवृतो ह्यात्मा मनना गोचरी-कृतः।

अर्थात् मायान्धकार-आवृत 'आत्मा' मन्त्र द्वारा इस प्रकार दृष्टि-गोचर होती है, जैसे कि दीप से अँधेरे घर में 'घट' दिखाई देता है।

मन्त्रात्मक वीज का आगमोक्त विवरण

अन्य शास्त्रों में 'मन्त्र' की व्याख्या—'मनन द्वारा त्राण करना' कही जाती है। उपर्युक्त तात्त्विक सृष्टि तथा यन्त्र के सृष्टि-क्रम में जो सिद्धान्त है, वही सिद्धान्त किसी भी मन्त्रात्मक बीज में है। 'मन्त्र' के तीन प्रधान भाग होते हैं—१ बीज, २ शक्ति एवं ३ कीलक। 'मन्त्र' का 'छन्द' उस 'मन्त्र' की भूमिका का निरूपण करता है। 'मन्त्र' का 'कीलक' 'महा-विन्दु' तथा 'देवता' का कारणात्मक शरीर है एवं 'शक्ति' मायोपाधि की निवृत्ति-स्वरूप व 'वीज' स्थूल 'आणव मल' की निवृत्ति-रूपात्मक है।

इस प्रकार वीज, शक्ति और कीलक से युक्त 'मन्त्र' स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं महा-विन्दु से समन्वित है। इसके पूर्ण अनुसन्धान के लिए मन्त्रावयव-ज्ञान आदि देखने चाहिए। प्रस्तुत विषय में केवल विन्दु-रूप (कारणात्मक कीलक-रूप) किसी भी वीज का विचार करना पर्याप्त होगा।

'यन्त्र' के सृष्टि-क्रम के सिद्धान्तानुसार यही क्रम सभी मन्त्रों में चलता है। उदाहरणार्थ अनन्त में स्थित 'विन्दु' की स्थिति का निरूपण करना असम्भव है क्योंकि तद्-गत विन्दु ही परा-रूप की अभिव्यञ्जना है। प्रणव (ॐ) के प्रसङ्ग में इसी को अनुच्चार्य विन्दु कहते हैं। इससे शिवात्मक विन्दु का पृथक्करण पूर्वोक्त विन्दु को विसर्ग-रूप बनाता है। पर-शिवात्मक विन्दु से मातृकाओं की उत्पत्ति करनेवाले दो अन्य विन्दु आविर्भूत होकर पूर्वोक्त 'विन्दु' की अन्यतम दिशाओं में फैलते हैं और 'विन्दु' के वाह्य देश में 'सदा-शिव' एवं 'ईश्वर'-तत्त्व-रूप इच्छा-क्रिया-ज्ञान-शक्त्यात्मक मातृकाक्षर-रूपी रेखाओं से समन्वित 'त्रिकोण' की रचना पूर्ण कर देते हैं।

अनन्त-स्थित 'विन्दु' उक्त प्रकार से अपनी ही इच्छा द्वारा त्रिकोण से घिर जाता है। इस त्रिकोण द्वारा उसकी स्थिति का सापेक्ष वर्णन हो सकता है। इस त्रिकोण के तीन विन्दु 'अनुच्चार्य विन्दु' से चैतन्यता-लाभ करते हैं और 'पर-शिव'-रूपी विन्दु से 'सदा-शिव'-रूपी 'प्रभु' एवं 'ईश्वर'-रूपी 'जीव' को उत्पन्न करते हैं। महा-विन्दु (मध्य विन्दु) ही स्वयं अनुच्चार्य स्वरूप अन्तर्हित है। इस प्रकार 'आगम' (तन्त्र-शास्त्र) के अनुसार 'मन्त्र' ही 'शब्द-ब्रह्म' है—**'शब्दं ब्रह्म-मयं तद्धि, ज्ञान-मार्गेण पश्यति।'**

मन्त्र के चार विन्दु ही १ अनुच्चार्य विन्दु-रूपी आनन्दात्मक 'परा', २ 'पश्यन्ती', ३ 'मध्यमा' और ४ 'वैखरी'—इन चार अवस्थाओं को प्रकट करते हैं। यह 'कीलक' का वर्णन है। मन्त्र के 'शक्ति' और 'वीज' अङ्ग उक्त त्रिकोण के बाहर अष्टार एवं भूपुर की रचना करते हैं। इस प्रकार 'मन्त्र' पूर्णाङ्ग अवस्था को प्राप्त करता है। कहा भी है—**'शिव-शक्ति-समायोगाज्जनितो मन्त्र-राजकः।'**

अनन्त में स्थित 'बिन्दु' से शिवात्मक 'विसर्ग-विन्दु' का पृथक् हो जाना ही प्रथम दोष की उत्पत्ति है। इसी से त्रि-गुण की उत्पत्ति होती है—**'हेतुः समस्त-जगतां त्रिगुणाऽपि दोषैः।'**

अन्य दो विन्दु मिलकर उक्त विसर्गात्मक विन्दु के संयोग से 'त्रिकोण' की रचना को पूर्ण करते हैं। इन तीनों की वैषम्य-पूर्ण स्थिति ही 'कीलक', 'वीज' और 'कारण जगत्' का पूर्ण विकास करती है। 'विन्दु' वास्तव में 'वृत्त' की सूक्ष्म-तम अवस्था है, तीनों विन्दुओं की वैषम्य-युक्त स्थिति होने से अर्थात् उन्हें विभाजित करने से छः अर्ध-वृत्त वनते हैं, जिनसे अनुच्चार्य मध्य 'महा-विन्दु' को मिलाने से 'प्रणव' की सात कलाएँ बनती हैं। इन कलाओं की अन्तिम सातवीं भूमि वही पूर्वोक्त अनुच्चार्य 'महा-विन्दु' है। कहा भी है—**'तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमिः प्रज्ञा।'**

अनुच्चार्य 'महा-विन्दु' के अतिरिक्त छः अर्ध-वृत्त ही षट् कलाएँ या षट् शिव हैं और अन्तिम अनुच्चार्य 'महा-विन्दु' ही कामेश्वराङ्क में विराजमाना पर-सम्वित्-रूपिणी 'श्रीविद्या' हैं।

'दीक्षा' द्वारा शब्द-ब्रह्म की वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा अवस्थाओं की प्राप्ति

अनुलोम-क्रम से 'शब्द-ब्रह्म' की चार अवस्थाएँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। 'दीक्षा' द्वारा इन्हीं अवस्थाओं को विलोम-क्रम से प्राप्त किया जाता है अर्थात् 'वैखरी' से क्रमशः 'परा' तक की अवस्था तक पहुँचा जाता है। इसी क्रम के कारण साधक की योग्यता के अनुसार विभिन्न दीक्षाओं द्वारा उसे अग्रसर करना पड़ता है। जैसे ही 'वैखरी' अन्तर्मुखी होती है, सुषुम्णा - नाड़ी में प्रविष्ट प्राण 'स्पन्दन'-रूपी 'नाद' की अनुभूति साधक को कराने लगता है। इसी बात को 'गन्धर्व तन्त्र' में इस प्रकार कहा है—**'लयौ वायौ च वायुना ध्वनौ ध्वनिं समर्पयेत्।'**

यह 'मध्यमा' का उदय है और यही 'मध्यमा', जो वायु-सङ्घर्ष-रहित 'अनाहत' ध्वनि है, प्रकाश में आने पर 'पश्यन्ती' कहलाती है—**'ज्योतिषां च लयस्तत्र ब्रह्मण्येवं मनो लयः'** अर्थात् नाद के ज्योति में लय होने से और ज्योति में परा के लय होने से मन 'ब्रह्म-लीन' हो जाता है। अनुच्चार्य बिन्दु में उक्त ज्योति के लीन होने से निःशब्द अवस्था शेष रहती है। अनुच्चार्य 'नाद' तने हुए परदे को सींक से पुनः-पुन. दबाने जैसी अनुभूति देता है।

'शब्द-ब्रह्म' की निःशब्द अवस्था की प्राप्ति ही दीक्षा' का लक्ष्य

'वैखरी' का 'परा' में लय होना 'शब्द-ब्रह्म' की निःशब्द अवस्था को प्राप्त करना है। 'भैरव-यामल' में कहा है—**'शब्दाख्या मातृका - रूपमक्षरं तु विराजितम्। अक्षरं च हुतं चात्र, निःशब्दः ब्रह्म जायते।'**

इस प्रकार मन 'उन्मनी अवस्था को प्राप्त होता है—**'मनसि चोन्मनी - भूते, न धर्मो न च पातकम्।'** अर्थात् मन के उन्मनी अवस्था में पहुँचते ही जीव धर्म-अधर्म से परे हो जाता है।

'दीक्षा' द्वारा स्वरूप का साक्षात्कार

'दीक्षा' द्वारा जीव को स्व - रूप का साक्षातकार होता है। इसी बात को 'नील - तन्त्र' में इस प्रकार कहा है—**'रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत्, दीक्षा-बिद्धस्तथैवात्मा शिवत्वं लभते प्रिये !'**

वास्तव में सभी दीक्षाएँ 'शक्ति-पात' के अन्तर्गत ही हैं। अतः वे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतीत होती हुई भी वस्तुतः एक ही हैं। 'मन्त्र' की वैखरी-भूमि अन्तर्मुखी होने पर 'भैरव-ज्ञान' में स्थित करती है। 'भैरव-विज्ञान' में लिखा है —**'यद् वेद्यं, यद् ग्राह्यं, यच्छून्यं, यद् भावगं, तत् सर्वं भैरवं भाव्यम्। तदन्तेवाथ सम्भवम्।'**

आशय यह है कि सांसारिक सभी व्यवहृत वस्तुओं में मात्र 'भैरव - भावना' और मन्त्रात्मक कुण्डलिनी में उनका हवन ही 'ब्रह्म-ग्रन्थि' भेदन करनेवाली 'वैखरी-भूमि' है। इस प्रकार क्रमशः 'मध्यमा' के उदय होने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि— **'जपः सोऽत्र स्वयं नादो'** (विष्णु-ग्रन्थि-भेद—भैरव - विज्ञान') अर्थात् अपने प्रयत्न के विना ही मन्त्र की नादात्मक अनुभूति का होना। इस नादात्मक अनुभूति की ऊर्ध्व गति होना ही इसे 'पश्यन्ती'-अवस्था में स्थित करता है, जिससे 'रुद्र - ग्रन्थि' का भेदन होता है। शून्य में विद्युन्माला से युक्त प्रकाश से स्व-मन्त्र-दर्शन-रूप ही यह 'पश्यन्ती'-जप है। 'रुद्रयामल' में कहा भी है—**'नखेन्दु-शोभे च विनाऽवलोकनम्।'**

'दीक्षा' द्वारा मन का ब्रह्म-लीन होना

उक्त 'पश्यन्ती' प्रकाश जब अन्तर्हित होकर शून्य में लीन होता है, तब 'समाधि' - रूप परा स्थिति प्राप्त होती है। इस परिस्थिति में 'त्रिपुटी' भी अन्तर्हित हो जाती है—स्वयं भैरवी शून्यता को प्राप्त कर लेती है, तब किसी पूजा की आवश्यकता नहीं रह जाती है—**'शून्यता परया शक्त्या, शून्यता-मेति भैरवी।'** और **'एवं विधे परे तत्त्वे, कः पूज्य कस्य तृप्यति।'** (भैरव-विज्ञान)

अद्वैत-भाव-प्राप्त उक्त प्रकार के साधक के प्रति 'गन्धर्व तन्त्र' का कथन है कि—**'अद्वैत-भावना-पन्ने, लीने मनसि ब्रह्मणि। को द्विजः कोऽथवा शूद्रः, को म्लेच्छ, कोऽधमः शिवे !'** अर्थात् अद्वैत - भाव के प्राप्त होने पर मन ब्रह्म-लीन हो जाता है। तब द्विज या शूद्र, म्लेच्छ या नीच आदि की भेद-भावना मिट जाती है। दीक्षा के फल - स्वरूप जाति - सम्बन्धी द्वैत-भावना से साधक मुक्त हो जाता है। वह सभी में ब्रह्म के दर्शन करने लगता है।

'दीक्षा' द्वारा पूर्ण कैवल्य-मुक्ति-लाभ

'दीक्षा' द्वारा 'मन्त्र' कर्ण (कान) आदि से शरीर में प्रविष्ट होकर परा-भाव की प्राप्ति करता है। 'कुलार्णव' में लिखा है—

दीक्षाग्नि - दग्धं कर्मासौ, मायाद्विच्छिन्न-बन्धनैः।
गतस्तस्य कर्म - बन्धौ, निर्जीवश्च शिवो भवेत्॥

अर्थात् सम्विदग्नि में प्रकृति-जन्य, माया-जन्य तथा (कार्मण मल) शिव - जन्य मलों के भस्म होते ही 'शिव' का 'शव' बनना ही पूर्ण कैवल्य-मुक्ति-लाभ करना है।

जीवों के अधिकार-भेद से 'दीक्षा' के भेद

पूर्वोक्त 'शव' ही अन्तिम 'संहार' में महा-काल की शव-रूप स्थिति है और उस पर आदि-शक्ति का पराऽऽनन्द ही कैवल्य का स्वरूप है, परन्तु अपने-अपने भिन्न-भिन्न कर्मों आदि से प्राप्त भिन्न - भिन्न स्थिति-युक्त जीवों के लिए 'दीक्षा' का भिन्न-भिन्न प्रयोग है, जिससे 'दीक्षा' के प्रकारान्तर का निर्णय होता है। उदाहरण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि होती है। एक तो झाड़ी-चट्टान - युक्त सामान्य, तो दूसरी उर्वरा-शक्ति-युक्त और तीसरे प्रकार की वह होती है, जिसमें जल की भी सुविधा हो और उर्वरता भी उत्तम प्रकार की हो। इस प्रकार इन तीन प्रकार की अवस्थानुसार शिष्य की स्थिति देखकर गुरु 'मान्त्री', 'शाक्ती' या 'शाम्भवी'——किसी प्रकार की दीक्षा की योजना करते हैं। यथा—

ज्ञान और अज्ञान से रहित करनेवाली 'शाम्भवी दीक्षा'

(१) कछुवी के देखने मात्र से उसके अण्डे से बच्चे निकलते और स्वयं पलते हैं। इसी प्रकार देखने मात्र से स्व-स्वरूप का साक्षात्कार करानेवाली 'दीक्षा' को 'मन्त्र-रूपिणी' कहते हैं। **'ज्ञातृ-ज्ञानमपाकार-करणान्मन्त्र-रूपिणी'** अर्थात् जो 'ज्ञातृ' और 'ज्ञान' को एकाकार कर देती है। यह शाम्भवी दीक्षा ज्ञान, अज्ञान और शिवोपाधि से जीव को रहित कर देती है।

अभेद स्थिति को प्राप्त करानेवाली 'शाक्ती दीक्षा'

(२) भेड़ों के साथ चरनेवाले बच्चे को शेर जल में उसका प्रतिबिम्ब दिखाता है। इस प्रकार उसके भेद-ज्ञान को दृढ़कर उसे स्व-स्वरूप का ज्ञान कराता है। इसी प्रकार गुरुदेव मूलाधार में सोई हुई कुण्डलिनी को अपनी शक्ति से चैतन्य कर शिष्य को चक्र-भेद कराते हुए स्व-स्वरूप का ज्ञान कराते हैं। अभेद-स्थिति को प्राप्त करानेवाली इस दीक्षा को 'शाक्ती दीक्षा' कहते हैं।

वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करानेवाली 'मान्त्री दीक्षा'

(३) कौए के घोंसले में पलते हुए अपने बच्चे को कोयल अपनी बोली सुनाकर उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराती है। इसी प्रकार गुरुदेव कृपा-पूर्वक अपनी शक्ति द्वारा चैतन्य एवं स्व-सिद्ध मन्त्र शिष्य को देकर उसे कृतार्थ करते हैं। यही 'मान्त्री दीक्षा' है।

'दीक्षा' का रहस्य–गुरुदेव (महा-काल आदि-नाथ) द्वारा शक्ति-पात

स्मरणीय वचन है कि—

आदि - नाथो महा - देवि ! महा - कालो हि यः स्मृतः ।
गुरुः स एव देवेशि ! सर्व - मन्त्रेषु नापरः ।।

अर्थात् आदि - गुरु केवल 'आदि - नाथ' ही हैं। उनसे तीन **'दिव्यौघ'** (१ प्रकाश, २ विमर्श, ३ आनन्द), तीन **'सिद्धौघ'** (१ ज्ञान, २ सत्य, ३ पूर्ण) और तीन **'मानवौघ'** (१ स्वभाव, २ प्रतिभ, ३ सुभग) का आविर्भाव हुआ। इन्हीं नौ नाथों के द्वारा 'दीक्षा' के उक्त तीन क्रम—१ शाम्भवी, २ शाक्ती और ३ मान्त्री प्रचलित हुए।

उपनिषद् का कथन है कि—**'गुरुरेकः'** अर्थात् गुरु एक ही है। उद्धार (दीक्षा) के समय स्वयं महा-काल आदि-नाथ मानव गुरुदेव में आविर्भूत होकर 'दीक्षा' देते हैं, जिससे शिष्य में 'शक्ति-पात' होता है। गुरु का वरण मुख्यतः 'दीक्षा' द्वारा मिलनेवाली इसी शक्ति के लिए किया जाता है। अन्यथा 'मन्त्र' तो केवल शास्त्र में लिखे हुए 'क्षर'-समूह मात्र ही हैं। गुरुदेव की सञ्चारिणी शक्ति दीक्षोपरान्त तीन दिनों तक शिष्य में कार्य करती है, फिर वह वापस गुरु के पास लौट जाती है। 'नील तन्त्र' में लिखा है—

'तस्यच्छायानुसारी स्यान्निकटे त्रि-दिनं वसेत्, पश्चाद् सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः।'

तन्त्रों के अनुसार योग्य गुरु द्वारा शक्ति-पात होने पर, शिष्य का कर्म-अवरोध प्रबल होते हुए भी, शिष्य को स्थूल शरीर ग्रहण नहीं करना पड़ता है। अत्यन्त पातकी शिष्य भी त्रि-जन्म से अधिक ग्रहण नहीं करता। अन्य शिष्य तो, गर्भ-बाधा-मुक्त हो अवशेष कर्मों के संहार के लिए, सूक्ष्म आदि शरीरों में साधना पूर्ण कर परा-लीन हो जाते हैं।

इस प्रकार 'दीक्षा' मोक्ष-मूल है। 'गुरु'-सेवा द्वारा 'शिवोपाधि' की भेषज, मल-त्रय - शुद्धि ही है। अन्यथा, जीव तो स्वयं 'शिव'-रूप ही है—**'शिवो जीवः शिवो जीवः, जीवो शिवः केवलम्।'**

संक्षेप में, 'दीक्षा' से पशु 'पशु-पति' बनता है। देखिए(कुलार्णव तन्त्र)—

यथा पारसस्य स्पर्शाद्, लौहो भवति काञ्चनः।
तथा परा - प्रासाद - मन्त्रज्ञो, पशुः पशु-पतिर्भवेत् ।।

अर्थात् 'पर -मन्त्र' द्वारा पशु भी 'महा-देव' बन जाता है।

'दीक्षा' से भाव-शुद्धि होती है। मनुष्य जीवितावस्था अर्थात् इसी जन्म में 'दीक्षा' द्वारा "परानन्द विभूति-रूप" स्व-स्वरूप की अनुभूति प्राप्त करने में समर्थ होता है।

दीक्षा-विधि

दीक्षा-समय

'मन्थान भैरव तन्त्र' में लिखा है कि—**वैशाख** के महीने में 'दीक्षा' लेने से 'सिद्धि' होती है, **श्रावण** में 'ऐश्वर्य-वृद्धि', **आश्विन** में 'सर्व - सिद्धि', **कार्तिक** में 'ज्ञान - वृद्धि', **मार्गशीर्ष** में 'कल्याण-प्रदा', **माघ** में 'उत्तम फल' देनेवाली और **फाल्गुन** में 'सर्व-सिद्धि - प्रदा'। उक्त मासों के अतिरिक्त शेष मास 'दीक्षा' के लिए निषिद्ध हैं।

'दीक्षा' के कार्य के लिए रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र उत्तम वार माने गए हैं। शनि और भौम का निषेध किया गया है।

तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और पूर्णमासी—'दीक्षा' के लिए उत्तम हैं, शेष निषिद्ध हैं।

अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, शतभिषा, पूर्वा-भाद्रपद, उत्तरा-भाद्रपद और रेवती नक्षत्र—'दीक्षा'-समय के लिए अनन्त फल देनेवाले माने गए हैं। शेष नक्षत्रों में दोष विशेष होने से वे त्याज्य हैं।

ऐश्वर्य-वृद्धि चाहनेवाले को 'शुक्ल-पक्ष' में और मुक्ति चाहनेवाले को 'कृष्ण - पक्ष' में 'दीक्षा' ग्रहण करनी चाहिए।

'दीक्षा'-समय पर शिष्य के ग्रहों का बलाबल देखना भी नितान्त आवश्यक है, अतएव निम्न-लिखित श्लोक दिया जाता है—

त्रि-षडाय गताः पापाः शुभाः केन्द्र-त्रिकोणगाः। दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्व-नाशकाः॥

दीक्षा-काल में सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु और केतु तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान में हों तथा बुध, गुरु और भृगु यदि केन्द्र (प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम) स्थान में तथा पञ्चम और नवम स्थान में हों, तो शुभ है, किन्तु यदि यही ग्रह अष्टम स्थानस्थ हों, तो अशुभ फल देनेवाले होते हैं।

'दीक्षा' के लिए उपर्युक्त दिवसों के अतिरिक्त सभी संक्रान्ति-दिवस और गुरु-देव के पर्व-दिवस भी शुभ बताए गए हैं। इन दिनों के अतिरिक्त **'देवी-पर्व-दिवसों'** में 'दीक्षा'-ग्रहण करने से कोटि यज्ञ-फल का लाभ होता है। **"देवी-पर्व-दिवस"** निम्न-लिखित हैं—

षष्ठी भाद्रपदे मासि कृष्णाश्विन-चतुर्दशी। कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गे कृष्णा च पञ्चमी॥
पौषे च पूर्णिमा देवी माघे चैव चतुर्थिका। फाल्गुनैकादशी कृष्णा चैत्रे मासि त्रयोदशी॥
वैशाखेऽक्षय्य तृतीया ज्येष्ठ-दशहरा स्मृता। आषाढे द्वादशी कृष्णा अमावास्या च श्राविणी॥

अर्थात् भाद्रपद मास की षष्ठी, आश्विन मास की कृष्णा चतुर्दशी। कार्तिक मास की शुक्ला नवमी तथा मार्गशीर्ष की कृष्णा पञ्चमी। पौष मास की पूर्णिमा और माघ मास की चतुर्थी, **फाल्गुन** मास की कृष्णा एकादशी, चैत्र मास की त्रयोदशी। वैशाख मास की अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ मास का दश-हरा। आषाढ मास की कृष्णा द्वादशी और श्रावण मास की अमावास्या।

यह 'देवी - पर्व' कहाते हैं और 'दीक्षा' के लिए अत्युत्तम बताए गए हैं। इन पर्व - दिवसों के अलावा 'सौभाग्य - चन्द्रोदय' में देवी - पर्वों की बहुत बड़ी गणना है। 'नित्योत्सव' में भी देवी - पर्वों की गणना की गई है।

विशेषता से–'श्रीनाथ-चरण' जिस समय सन्तुष्ट हो जाएँ वही दिन, वही नक्षत्र आदि 'दीक्षा' के लिए परम पवित्र हैं, अतः सर्वतोभावेन गुरु-देव को प्रसन्न करना चाहिए। उनकी प्रसन्नता से सब देवता प्रसन्न होते हैं। कहा भी है––

सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः। यस्मिन्नहनि सन्तुष्टा गुरुः सर्वे शुभावहाः।
सन्तुष्टे गुरौ तस्य सन्तुष्टाः सर्व-देवताः। गुरुं सन्तोषयेत् भक्त्या द्वयमेव तदा भवेत्।

'द्वयमेव' से अर्थ––'भोग' और 'मोक्ष' का है। अर्थात् 'श्रीगुरु-चरण-कृपा' से 'भोग' और 'मोक्ष' दोनों की प्राप्ति होती है।

शिष्य द्वारा आह्वान

शिष्य नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर, वाद्य-घोष के साथ ब्राह्मणों-द्वारा स्वस्ति-वाचन करा कर, सङ्कल्प करे कि मैं अमुक गुरु-वर से 'दीक्षा' ग्रहण करूँगा। अनन्तर उपहार लेकर गुरु - चरण में जा दण्ड-वत् प्रणाम करके, गुरु जी की आज्ञा से सङ्कल्प करे कि––**"चतुर्विध पुरुषार्थ-सिद्धि के लिए 'स्व-इष्ट-अनुग्रहण' करने हेतु 'गुरु-वरण' करता हूँ।"**

गुरु-वरण

'गुरु-वरण'-क्रिया-समाप्ति पर शिष्य तथा साधकों के साथ गुरु-देव गोमयोपलिप्त सुसज्जित मण्डप में प्रविष्ट होकर, आसन के ऊपर बैठें। भू-शुद्धयादि, प्राण - प्रतिष्ठान्त-कर्म - सम्पादन कर जिस 'विद्या' की 'दीक्षा' देनी हो, उसके अङ्ग देवताओं के साथ उसकी पद्धत्यनुसार सपर्या समाप्त करने के अनन्तर नवीन वस्त्र से, शिष्य का मुख ढँक कर, उसे 'मण्डप' में बुलावे। 'मूल-मन्त्र' का उच्चारण कर, सामान्यार्घ्योदक से उसे प्रोक्षित कर उसे 'शाक्त-सिद्धान्त' सुनावे।

'शाक्त-सिद्धान्त' श्रावणानन्तर निम्न-लिखित उपासक-धर्मों का श्रवण करावे कि अन्य दर्शनों की निन्दा न करे, स्व-इष्ट-देवता के अतिरिक्त किसी भी देवता में महत्त्व-बुद्धि न रखे, सत्-शिष्य के पास ही रहस्यों का उद्घाटन करे। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सर्वदैव स्वोपास्य-मन्त्र का चिन्तन करे। नित्य **'मैं शिव हूँ'**––इस प्रकार की भावना में मग्न रहे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, हिंसा, चोरी, जन-विरोध और स्त्री-विरोध का परित्याग करे। केवल सर्वज्ञ गुरु - देव की उपासना, गुरु - वाक्य और शास्त्र में संशय - हीन होना, फल की अनिच्छा से कर्म का आचरण, वर्णाश्रम के अनुकूल नित्य कर्म का सम्पादन, पञ्च-मकारों के लाभ न होने पर भी सपर्यानुष्ठान और विधि-पूर्वक कर्म करने में निर्भय रहना इत्यादि उपासक-धर्मों का वर्णन करे।

कलश-स्थापन

अनन्तर १ शुण्ठी, २ मिरच, ३ पीपल, ४ हरीतकी, ५ आमलक, ६ विभीतक-त्वक्, ७ एला, ८ लवङ्ग, ९ पत्र, १० नाग-केशर, ११ कक्कोल, १२ मदयली और १३ सह-देवी––इन 'त्रयोदश औषधियों' के चूर्ण से मिश्रित तथा दूर्वा और भस्म से युक्त एवं १ गज-शाला, २ अश्व-शाला, ३ चौराहा, ४ वल्मीक, ५ नदी-सङ्गम, ६ तालाब और ७ गोष्ठ से लाई गई––'सप्त मातृकाओं'-सहित, चन्दन, केसर, गोरोचन तथा कर्पूर–इन चारों से सुगन्धित पवित्र शीतल जल से परिपूर्ण, नूतन **'कलश'** नवीन वस्त्र-युग्म से वेष्ठित कर, 'ईशान दिग्-भाग' में शालि 'तण्डुलों' के ऊपर स्थापित करे। 'इष्ट' के 'षडङ्ग मन्त्र' से उसकी पूजा कर, उसके भीतर स्व-इष्ट - देव तथा उनके मुख्य अङ्ग देवताओं के यन्त्रों को डाल कर, उन देवताओं की उनके मन्त्रों से पूजा करके यथा-स्थान स्थापित कर देवे।

यहाँ पर ध्यान रहे कि यदि श्रीविद्या जी की 'दीक्षा' हो, तो बाला - षडङ्ग से कलशार्चन कर ललिता, श्यामा और वाराही यन्त्र उस कलशोदक में पड़ेंगे। अन्य देवता की दीक्षा हो, तो पद्धत्यनुसार अन्य देवताओं के ही यन्त्र कलश में पड़ेंगे।

कलश-स्थापनानन्तर, चन्दनादि काष्ठ के पीढ़े पर क्षीर - मिश्रित सिन्दूर अथवा कुंकुमादि से 'मातृका-यन्त्र' को लिखकर, उसके ऊपर शिष्य को बैठा पूर्वोक्त कलश-जल से इष्ट-देवता को मूल - विद्या से स्नान करावे।

स्नानानन्तर, गन्ध - मालादि से भूषित कर अपने पार्श्व में बैठावे। उसके अङ्गों पर 'मातृका-न्यास'-विधि से एक - पञ्चाशत् 'मातृका - न्यास' कर, उसके नेत्रों के आवरण को दूर कर—उसके हाथ में प्रथम-सिक्त चन्दनोक्षित पुष्प-खण्डों के साथ द्वितीय शकलों को रख कर, तत्त्व-मन्त्रों द्वारा उससे 'तत्त्व-शोधन' करावे। उसके बाद श्रीविद्या की दीक्षा हो, तो श्रीविद्या 'गुरु-पादुका मन्त्र' का उपदेश कर, अनन्तर 'बाला' का उपदेश करे। देवतान्तर की 'दीक्षा' हो, तो पद्धत्यनुसार कर्म करे। **पाठकों को ध्यान रहे** कि यदि शिष्य योग्य हो, तो 'मान्त्री दीक्षा' के पूर्व शाम्भवी और शाक्ती दीक्षाएँ भी आवश्यक हैं, किन्तु यह विशेष प्रकार है। सामान्य में केवल 'मान्त्री दीक्षा' ही होनी चाहिए।

नामकरण

'पूर्णाभिषेक' हो, तो तीन दीक्षाओं को समाप्त कर पुनः शिष्य को 'इष्ट - मन्त्र' प्रदान करे। मन्त्र प्रदान करने के बाद गुरु-देव शिष्य के मूर्धोपरि स्व-पादुका प्रदान करे तथा 'इष्ट-मन्त्र' क्रमोपयोगी सम्पूर्ण अङ्ग-मन्त्रों को उसी समय अथवा क्रम से यथाधिकार उपदिष्ट करे। इसके पश्चात् अपने अङ्गों में से किसी अङ्ग को शिष्य से स्पर्श कराकर, उस अङ्ग से सम्बन्धित मातृका - अक्षरों में से किसी एक अक्षर को लेकर, दो या चार अक्षर का नाम - करण करे और उस नाम के अन्त में 'आनन्द' या 'नाथ' जोड़े।

इसके अनन्तर **"तू सच्चिदानन्दात्मक प्रत्यगभिन्न ब्रह्म है"**—इस प्रकार शिष्य को 'आत्म-तत्त्व' का उपदेश कर, श्रीविद्योपदेश हुआ हो, तो—ललिता, श्यामा, वार्ताली विद्याओं से उसका शरीर तीन बार परिमार्जित कर, उसका आलिङ्गन करे तथा शिष्य का शिर सूंघकर शिष्य को भी पर - चिद्रूप बना देवे।

शिष्य भी, तब **'मैं परिपूर्ण स्वरूप हूँ'**— इस प्रकार अपने मन में भावना कर, कृतार्थ होकर श्रीगुरु-देव को यथा-विभव— "वित्त-शाठ्यं न कारयेत्" के अनुसार वस्त्राभूषणादि से तथा दक्षिणा-द्रव्य से सन्तुष्ट करे।

इसके अनन्तर गुरु-वर हविः प्रतिपत्ति से लेकर, विशेषार्घ्य के विसर्जन-पर्यन्त शेष विधान को समाप्त करते हैं तथा अन्त में वीर-साधक सपर्य्या-समाप्ति में निम्न-लिखित शान्ति-पाठ करते हैं—

श्रीविद्या भुवनेश्वरी च बगला तारा मतङ्गात्मजा, काली छिन्न-गला सरोज - निलया धूमावती भैरवी।
सु-प्रीताः परिवाहन-युताः साङ्गायुधास्तर्पिताः, नन्दन्तु परिपालयन्तु समयाचारे रतान् साधकान्॥

इस प्रकार 'दीक्षा' द्वारा 'कुल-धर्म-निष्ठ' होने से, साधक जीवन्मुक्त कृत-कृत्य हो जाता है।

संक्षिप्त 'दीक्षा'-विधि

'दीक्षा'-विधि बहुत सी हैं। इन विधियों की कठिनाइयों को देखते हुए कलि-काल में 'मन्त्रोपदेश' ही सुलभ है। 'विश्वसार-तन्त्र' का वचन भी है कि—'**महा-दीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्ततः परम्। युगे-युगे तु कर्तव्या, उपदेशः कलौ युगे।**'

मेरे गुरु-देव की बताई हुई सरल 'मन्त्रोपदेश-विधि' इस प्रकार है—

"जिस दिन 'दीक्षा' का मुहूर्त हो, उस दिन सर्व-प्रथम वेदज्ञ ब्राह्मणों से स्वस्ति-पाठ करावे। उसके बाद दीक्षार्थी आचमन कर प्राणायाम करे। तदनन्तर आचार्य 'सुमुखश्चैक-दन्तश्च' आदि मन्त्रों से मङ्गल-पाठ करे। तब दीक्षार्थी हाथ में जल लेकर 'सङ्कल्प' करे। 'सङ्कल्प'-वाक्य के अन्त में—'धर्मार्थ-काम-मोक्ष-सिद्ध्यर्थं अमुक-गोत्रोऽमुक-शर्माहं अमुक-देवता-मन्त्र-प्राप्त्यर्थं अमुक-गोत्रममुक-शर्माणं त्वां गुरुत्वेन वृणे'—यह वाक्य जोड़कर 'सङ्कल्प' के द्वारा 'गुरु' का वरण करे।

इसके बाद गुरु 'सर्वतोभद्र-मण्डल' पर सलिल-पूर्ण 'घट' स्थापित करे। पुष्पादि से उसका यथा-विधि पूजन कर, दो वस्त्रों से उसे लपेट कर उसमें—१ पनस, २ आम्र, ३ अश्वत्थ, ४ वट, ५ वकुल आदि पञ्च-पल्लव और मुक्ता, माणिक्यादि नव-रत्न छोड़कर, नित्यार्चन-क्रम से जिस देवता का मन्त्र देना हो, उसका सविधि पूजन करे। तदनन्तर देवता के मूल-मन्त्र से 'घट' को १०८ बार अभिमन्त्रित करे।

इसके बाद शिष्य को पूजा-स्थान में पूर्व की ओर मुँह करके आसन पर बिठावे और देवता के मूल-मन्त्र द्वारा 'प्रोक्षणी-पात्र' तथा 'कुम्भ' के जल से १०८ बार पल्लवों से उसका अभिषेक करे। फिर गुरु अपने और शिष्य के शिर पर कपड़ा डाल कर, उसके दाहिने कान में देवता के मूल-मन्त्र का तीन बार उपदेश करे। अन्त में यह वाक्य कहे—'अयं मन्त्रः सिद्धिदः भवतु मम त्वावयोः'।

यदि यह सब सम्भव न हो, तो केवल 'शङ्ख-पात्र' की विधि-पूर्वक स्थापना करे। उसे देवता के मूल-मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित कर, उस जल से देवता के मूल-मन्त्र द्वारा शिष्य का मार्जन करे। इसके बाद शिष्य के शिर पर गुरु अपना हाथ रखकर पूर्व-वत् 'मन्त्र' का उपदेश करे।

'वीर'-साधक के मन्त्रोपदेश में विशेष यह है कि उसे पहले पात्र दिया जाता है, तब 'मन्त्र' का उपदेश होता है। 'गुरु' शिष्य के हाथ में पात्र देकर, यह मन्त्र पढ़ता है—

गुरु— इदं पवित्रममृतं, पीयतां भव-भेषजम्।
पशु-पाश-समुच्छेद-कारणं भैरवोदितम्॥

शिष्य निम्न मन्त्र पढ़ कर अमृत का पान करता है—

शिष्य— धर्माधर्म-हविर्दीप्तमात्माग्नौ मनसा स्रुवा।
सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्ति जुहोम्यहम्॥

यदि यह सब भी सम्भव न हो तो, 'चन्द्र' या 'सूर्य'-ग्रहण में अथवा किसी तीर्थ या किसी सिद्ध-क्षेत्र में या शिवालय में गुरु से मन्त्र का उपदेश ग्रहण करे।

दीक्षा लेने से पूर्व

यदि आपको 'शाक्त-दीक्षा' ग्रहण करना है, तो अपना 'जन्म-पत्र' देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि, राहु या केतु पञ्चम या नवमस्थ है न ?

२—'कार्कांश' से नवम में, गुरु के स्थान में चन्द्र और भौम है न ?

३—'कार्कांश लग्न' में चन्द्र-केतु या शुक्र-केतु या 'कार्कांश' से पञ्चमस्थ अथवा 'कार्कांश' से पञ्चम पर गुरु, शुक्र दृष्टि डालते हैं न ?

४—'कार्कांश' से नवम में गुरु के नवांशादि पति शुभ ग्रह से दृष्ट हैं न ?

५—आपकी जन्म-कुण्डली में बुध या राहु पञ्चमस्थ हैं न ?

६—आपके पञ्चमेश और नवमेश का सम्बन्ध तो दृढ़ है न ?

यदि इनमें से एक भी योग आपकी कुण्डली में नहीं है, तो 'शाक्त-दीक्षा' के विचार को छोड़ दीजिए ।

यदि आप 'वैष्णव दीक्षा' ग्रहण करना चाहते हैं, तो अपना जन्माङ्क देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य, चन्द्र या बुध स्थित हैं न ?

२—आपकी जन्म-कुण्डली में नवमस्थ बुध है न ?

३—कार्कांश लग्न में बुध, शनि लग्नस्थ हैं न ?

यदि इनमें से कोई योग नहीं है, तो 'वैष्णव-दीक्षा' के विचार को छोड़िए ।

यदि आप 'शैव दीक्षा' ग्रहण करना चाहते हैं, तो अपना जन्माङ्क देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य ग्रह या केतु हैं न ?

२—'कार्कांश कुण्डली' में लग्नस्थ सूर्य और केतु हैं न ?

३—कार्कांश में लग्नस्थ गुरु हैं न ?

४—जन्म-कुण्डली में नवमस्थ स्व-क्षेत्री शनि हैं न ?

५—जन्म-कुण्डली में पञ्चम भाव सूर्य से युक्त या दृष्ट है न ?

यदि इनमें से कोई योग आपकी कुण्डली में नहीं है, तो 'शैव-दीक्षा' के विचार को छोड़िए ।

सबसे पहले यह देखिए कि आपका 'कार्कांश' शुक्र से दृष्ट तो है, अन्यथा 'दीक्षा'-प्राप्ति में ही आपको कठिनता है ।

१—यदि 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य है, तो आप शिवोपासना कर सकते हैं । 'वैष्णव दीक्षा' में 'राम'-मन्त्र आपको सफलता देगा ।

२–'कार्कांश' से नवम पञ्चम में यदि चन्द्र है, तो 'गौरी'-भक्त तपस्वीता या 'कृष्ण'-उपासना आपके लिए प्रकृति द्वारा निश्चित है।

३––उसी अवस्था में मङ्गल के होने पर 'स्कन्द' या 'हनुमान' की उपासना ही श्रेयस्कर है।

४ –बुध के उन्हीं स्थानों में होने पर आपको तीर्थ-यात्रा, देवालय, भक्ति, नर्तन, पुराण, मन्त्र-यन्त्र, महा-तन्त्र, वेदान्त, वैराग्य आदि से रुचि है। आप 'विष्णूपासना' ही करें।

५––यदि 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में गुरु स्थित है, तो मीमांसा तर्क वेदान्त, तप, दान, धर्म, परोपकार, नैष्ठिकत्व में आपका विश्वास है, आप ब्रह्मा या शिव की उपासना करें।

६—शुक्र के उन्हीं स्थानों पर स्थित होने पर भगवती त्रिपुर-सुन्दरी, महा-लक्ष्मी, महा-गौरी आदि की उपासना आपको श्रेयस्कर है।

७––शनि की 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में स्थिति होने पर आद्या महा-विद्या, छिन्नमस्ता, धूमावती आदि की उपासना आपको श्रेयस्कर है।

८ राहु के 'कार्कांश' से नवम पञ्चम होने पर सब छोड़कर आप केवल दुर्गा-उपासना करें।

९—केतु की 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में स्थिति आपको शिव, गणेश या चण्डी की उपासना से सिद्धि दे सकती है।

१०–'कार्कांश' लग्न में सूर्य केतु पर 'शिव'-भक्ति, चन्द्र होने पर 'गौरी'-भक्ति, शुक्र होने पर 'लक्ष्मी, त्रिपुर-सुन्दरी', मङ्गल होने पर 'स्कन्द', 'हनुमान', बुध और शनि होने पर 'विष्णु', गुरु होने पर 'साम्ब शिव', राहु होने पर 'दुर्गा', केतु होने पर 'गणेश' या 'स्कन्द' की उपासना में आपको शीघ्र तन्मयता प्राप्त हो सकती है।

'अमात्य कार्कांश' होने पर भी इसी प्रकार का विचार कीजिए।

११—कार्कांश त्रिकोण में यदि दो पाप-ग्रह हैं, तो आप अच्छे मान्त्रिक हैं। यदि उन पर पाप-दृष्टि है, तो निग्रहात्मक और शुभ दृष्टि है, तो अनुग्रहात्मक 'मन्त्र-सिद्धि' आपको तत्काल प्राप्त होगी।

१२—जन्म-कुण्डली में सूर्य मित्र-क्षेत्री होकर यदि नवमस्थ आपके हैं, तो आप अनुष्ठान-शील, सात्विक और देवताओं में दृढ़-भक्तिवाले हैं। साथ ही यह देख लीजिए कि आपके प्रथम और दशम वर्ष में तीर्थ-यात्रा का योग हुआ या नहीं। यदि नहीं हुआ, तो आपका सूर्य नवमस्थ मित्र-क्षेत्री नहीं है।

१३—यही सूर्य यदि उच्चस्थ या स्व-ग्रही है, तो ईश्वर में, देवताओं में और गुरु में आपकी दृढ़ भक्ति सम्भव है, किन्तु यदि नीचस्थ या शत्रु-ग्रही होकर यह नवम में है, तो आप धर्म पर जो रुचि जाहिर करते हैं, वह कतई झूठ है।

१४–बुध, गुरु और दशमेश तीनों यदि बलवान् हैं, तो आप यज्ञादि कृत्यों का अनुष्ठान करने-वाले, धर्म-शास्त्रों के श्रवण-मनन में समय बितानेवाले, मन्दिर-तालाब आदि के निर्माता, ब्राह्मण-देवताओं में श्रद्धा रखनेवाले हैं।

१५—जन्म-कुण्डली में पञ्चम भाव को मङ्गल देखता है या मङ्गल पञ्चम भाव में स्थित है, तो आप 'भैरव', 'कार्तिकेय' के भक्त हैं।

१६—शुक्र के नवमस्थ होने पर आप 'गुरु'-भक्त हो सकते हैं।

१७--जन्म-कुण्डली में यदि नवम भाव में नीच का शनि पाप-ग्रहों से युक्त आपके है और पञ्चम या नवम पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं है, तो आपको जो दीक्षा देगा, उसी के मत का आप खण्डन करेंगे। यदि शनि स्व-क्षेत्री है और उन्तीसवें वर्ष में आपने गो-शाला या घाट का निर्माण किया है, तो आप 'महा-शिव-याग' के कर्त्ता बनेंगे।

१८--जन्म-कुण्डली में यदि राहु अन्य पाप-ग्रहों के साथ में है, तो आपको 'दीक्षा' देकर आपके गुरुदेव को पछतावा ही होगा, क्योंकि आप भक्ति, धर्म-कर्म - विहीन, गुरु-ईश्वर-माता-पिता आदि में विश्वास-श्रद्धा न रखनेवालों में से हैं।

१९--आपके नवम भाग में यदि शुभ-दृष्टि से हीन अकेला केतु है और पञ्चम में भी कोई शुभ-ग्रह नहीं है, तो ज्यादा अच्छा हो कि आप किसी मस्जिद या गिरजा-घर को टटोलें।

२०--'जन्म-कुण्डली' में पञ्चमस्थ बुध सभी देवताओं का भक्त बनाता है।

२१--'जन्म-कुण्डली' में पञ्चमस्थ राहु हो या राहु पञ्चम को देखता हो, तो आप यक्षिणी-प्रेत, शनि आदि पीड़ाकारी देवताओं के उपासक हो सकते हैं। ऐसा 'ज्योतिष-विज्ञान' का मत है।

२२--'जातक-तत्त्व' कहता है कि कारकांश कुण्डली में लग्नस्थ केतु चन्द्र हैं, तो गौरी; केतु शुक्र हैं तो महा-लक्ष्मी, दश-महा-विद्या। उसी कुण्डली में पञ्चम से गुरु का सम्बन्ध होने पर महा-सरस्वती और शुक्र का सम्बन्ध होने पर महा-काली की उपासना आपको कल्याणकारी होगी।

२३--दशमेश उच्च स्व-ग्रही या मित्र-ग्रही शुभ-ग्रह हो, तो आप आध्यात्मिक अनुभूति पाएँगे।

२४--नवम में मीन राशि में बुध या मङ्गल जन्म-कुण्डली में है, तो आत्म-ज्ञान से आपकी मुक्ति हो सकती है।

२५--यदि आपका दशमेश नवमस्थ है, बलवान है और नवमेश गुरु और शुक्र से दृष्ट है या उनके साथ है, तो आप जप-ध्यान में सफल हो सकते हैं।

[यहाँ जो फलादेश वर्णित हैं, उन्हें शब्दशः स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि 'ज्योतिष-विज्ञान' केवल सम्भावना की ही सूचना देता है। व्यक्ति अपनी दृढ़ भावना द्वारा कुछ भी कर सकता है। 'सद्-गुरु' और 'इष्ट-देवता' की कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। 'ज्योतिष-विज्ञान' से व्यक्ति को यह आभास मिल सकता है कि उसके जीवन में क्या-कुछ होना सम्भव है और वह उस सबके प्रति सचेत रहकर अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। अतः आवश्यक है कि ज्योतिष-विज्ञान से इस बात का ज्ञान अवश्य प्राप्त किए रहे कि उसका जीवन किस ग्रह की महा-दशा में बीत रहा है और अन्तर्दशा किस ग्रह की है। इस सम्बन्ध में अपने गुरुदेव से आवश्यक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।--सं०]

क्रम-दीक्षा

[तन्त्र-शास्त्र में 'क्रम-दीक्षा' को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसकी बहुत बड़ी महिमा है। इसमें मन्त्र का षट्-चक्र-शोधन नहीं होता। यह 'दीक्षा' गुरु-देव की अद्वितीय कृपा से उपलब्ध होती है। इसमें दिवस, मास और वर्षों के क्रम से 'दीक्षा' और अभिषेक होते ही रहते हैं, अतएव इसका नाम 'क्रम-दीक्षा' है। जैसे पढ़नेवाला छात्र प्रति-वर्ष अगली श्रेणी में चढ़ता जाता है और जो बहुत ही योग्य होता है, उसे वर्ष भर में 'डबल प्रमोशन' भी मिल जाता है, उसी प्रकार गुरु-देव शिष्य की योग्यता देखकर कभी एक वर्ष में और कभी वर्ष भर में दो-तीन बार एक दीक्षा से दूसरी दीक्षा के स्तर में पहुँचाते हैं और अन्त में श्रीनाथ-कृपा द्वारा उसका दीक्षा-कार्य सम्पूर्ण हो जाता है। इस 'दीक्षा' का क्रम सामान्य लोगों के लिए नहीं है, इसलिए गुरु-देव और शास्त्रों के द्वारा ही साधक इसका रहस्य जान सकते हैं। यहाँ 'क्रम-दीक्षा' के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।—सं०]

षडाम्नाय के यथार्थ ज्ञान हेतु 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता

गणेश - वटुक - स्तुता रति-सहाय-कामान्विता, स्मरारि-वर-विष्टरा कुसुम-वाण-वाणैर्युता।
अनङ्ग-कुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः, कदम्ब - मध्यगा त्रिपुर - सुन्दरी पातु नः।।

एक महा-विद्या के आश्रय में रह कर भिन्न-भिन्न प्रकार की मुक्ति तो मिलती है, परन्तु स्वयं 'शिव-रूप' बन कर 'निर्वाण-मुक्ति' सकल आम्नाय-वेत्ता को ही प्राप्त होती है। अतएव 'क्रम - दीक्षा' नितान्त आवश्यक है। एक आम्नाय से भी अष्ट-सिद्धि, नव - निधि आदि सिद्धियाँ प्राप्त करके साधक सिद्ध बन सकता है, परन्तु यथार्थ शिवत्व की प्राप्ति के लिए 'षडाम्नाय' की आवश्यकता अवश्यमेव है। इस विषय में निम्न प्रमाण है—

यथा स्वल्प - सुखे मग्नो न प्राप्नोति महत् सुखम्। तथा सिद्धौ निमग्नस्य मुक्तिर्दूरे प्रवर्तते।।
तस्मात् सिद्धीस्तृणी-कृत्य भजेच्छ्री - परमेश्वरीम्। अल्पं तपः क्षणान्नश्येत् मध्यमं चापि गर्वतः।।

अर्थात् जो मनुष्य सर्वदा यत्-किञ्चिन्मात्र सुख से सन्तुष्ट रहता है, वह बड़े सुख से वञ्चित रहता है। इसी प्रकार जो साधक संसार को सिद्धि दिखाना ही परम कर्तव्य समझता है, उस साधक से मुक्ति कोसों दूर रहती है। अतएव सिद्धियों को तिनके के समान तुच्छ विचार कर, प्रणत - जन-शङ्करी परमेश्वरी का आराधन करना ही साधक को श्रेयस्कर है।

किस आम्नाय से किस प्रकार की मुक्ति को साधक प्राप्त करता है, इस प्रश्न का उत्तर निम्न-लिखित 'मेरु-तन्त्र' का वचन चारुतया प्रदर्शित करता है—

दक्षिणोपासकः कालः ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात्। देवतायास्तथा पूर्वः सारूप्यं लभते परम्।।
सामीप्यं चोत्तरो लोके पश्चिममवैदिकं फलम्। लाभस्त्यागश्चोपकारो ह्यधोमार्गोऽप्युदर्क-युक्।।

'कुलार्णव' भी 'मेरु-तन्त्र' की पुष्टि करता है और कहता है—

एकाम्नायं च यो वेत्ति स मुक्तो नात्र संशयः। किं पुनश्चतुराम्नाय - वेत्ता साक्षात् शिवो भवेत्।
चतुराम्नाय-विज्ञानादूर्ध्वाम्नायः परः प्रिये! तस्मात् तदेव जानीयात् यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः॥

अर्थात् एकाम्नाय को सम्यक् प्रकारेण जानने से भी उपासक मुक्ति को प्राप्त हो जाता है और यदि चतुराम्नाय-वेदी हो, तो कहना ही क्या! वह साक्षात् शिव हो जाता है। चतुराम्नाय से परे ऊर्ध्वाम्नाय है। अतः हे पार्वति! साधक को ऊर्ध्वाम्नाय के जानने के लिए ही चेष्टा करनी चाहिए।

षडाम्नाय के यथार्थ ज्ञान के बिना 'षट्-चक्र' की शुद्धि नहीं होती और उसकी शुद्धि के बिना 'शिव-स्वरूप' नहीं हो सकता। इस बात पर 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' भी स्वतन्त्रता से प्रकाश डालता है—

सुन्दरी तारिणी काली क्रम-दीक्षाऽभिगामिनी। क्रम-पूर्णो महेशानि! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति॥

'वृहद् बड़वानल तन्त्र' इसकी और भी पुष्टि करता है—

सुन्दरी तारिणी काली क्रम-दीक्षांऽभिगामिनी। क्रम-पूर्णो महेशानि! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति॥
सुन्दरी हादि-विद्या च सादि-विद्या च तारिणी। कादि-विद्या गुह्य-काली मत-त्रय-विभिन्नगा॥

इसका तात्पर्य यह है कि 'क्रमिक पुरुष' जितना क्रम करता रहता है, उतनी ही 'चक्र - शुद्धि' होती जाती है। क्रम-पूर्ण होने के अनन्तर उसको 'शिवत्व-शक्ति' प्राप्त होती है।

क्रम-दीक्षा के सन्दर्भ में—'मन्त्र' द्वारा आम्नाय-परक 'चक्र-शुद्धि'

अब 'मन्त्र' द्वारा 'चक्र-शुद्धि' के विषय में प्रकाश डाला जाता है। जब हम लोग बोलते हैं, उस समय से निकले हुए शब्द के साथ वायु के सङ्घर्ष से जिस प्रकार अन्य जनों को कर्ण-द्वारा बोध होता है, उसी प्रकार जब 'मन्त्र'-शब्द का भी मन से मनन होता है, उस समय बाह्य वायु के साथ सङ्घर्ष न होकर आभ्यन्तरिक वायु के साथ सङ्घर्ष होता है। जिस 'मन्त्र' का जो आम्नाय है, वह आम्नाय 'चक्र' में वायु के सङ्घर्ष से यन्त्राकार बन जाता है। जिस 'मन्त्र' का जो देवता है, उसके मन्त्र का ही आवर्ताकार बन जाता है। अतएव मन्त्र, यन्त्र और देवता एक ही माने गए हैं। जैसे यदि स्थिर-चित्त होकर कोई पुरुष एक मिनट मात्र भी प्रणव का चिन्तन करे, तो उसके हृत्-कमल में वायु के सङ्घर्ष से षट् - कोण का आकार बन जाता है। अतएव 'मन्त्र' का मन से ही मनन करना लिखा है। 'सनत्कुमार - संहिता' में कहा है—

वाचिका लक्ष - गुणितं उपांशुः परिकीर्तितः। उपांशोः कोटि-गुणितो मानसस्तु प्रशस्यते॥

अर्थात् वाचिक से उपांशु जप लाख गुना अच्छा है और मानसिक जप उपांशु जप से कोटि गुना बढ़िया है। वास्तव में जप, मानसिक ही करना अच्छा होता है। तन्त्रान्तर में लिखा है कि जो पाठ को मन में और जप को जोर से (ऊँचे स्वर से) कहता है, वह जप और पाठ दोनों निष्फल होते हैं।

क्रम के विषय में १ कादि, २ हादि, ३ सादि तीन विद्यायें हैं, जिनका रहस्य निम्न प्रकार है—

सादि विद्या, 'तारा' है और वह 'अधराम्नायात्मिका' है तथा 'मूलाधार-चक्र' की नायिका है। 'मूलाधार-चक्र' अनुत्तर का परामर्शक है।

कादि विद्या, 'काली' है। शाम्भव मतानुसार 'अनाहत-चक्र' उत्तराम्नायात्मक है, उत्तराम्नाय की नायिका 'गुह्य - काली' है। वह अनाहत - चक्र, उसी अनुत्तर के अनाहत से स्थूल-रूप में परिणत और परामर्शक है।

हादि विद्या, 'सुन्दरी' है। 'सहस्रार-चक्र' श्री - विद्यात्मक चक्र है। अनुत्तर और अनाहत दोनों का विश्रान्ति-दायक यही 'सहस्रार-चक्र' है।

'इच्छा-शक्ति' हादि-मतगा 'ललिता-त्रिपुर-सुन्दरी', 'ज्ञान-शक्ति' महाचीन-क्रम-संयुत संवरौधि-मत-प्रसिद्धा सादि-मतगा (सादि-क्रम समष्टि-रूपिणी) 'महोग्र-तारा' तथा 'क्रिया-शक्ति' कादि-मतगा काल के कलन करने में तत्पर (काल-संकलनात् काली) 'महा-काली' होती है। इस प्रकार हादि, सादि, कादि क्रम से तीन प्रकार के रूपवाली भगवती श्री त्रिपुर-सुन्दरी (त्रिपुरा) हैं।

हमारे शरीर में षोडश आधार हैं। प्रत्येक आम्नाय के 'मूल - मन्त्र', षोडश भागों में विभक्त होते हैं। इन षोडश भाग-विभक्त मन्त्रों के प्रत्येक भाग कर, प्रत्येक आधार में विभाव कर मन्त्रार्थ-विचार एवं मन्त्र-चैतन्य के अभ्यास के साथ, मन्त्र का मनन करने से शरीर में एक विशेष प्रकार की झंझनाहट और उस 'चक्र' का नाद भी सुनने में आता है। उसी में वायु का सङ्घर्ष होने से उस आम्नाय का जो चक्र है, उसमें उस मन्त्र के रूप का आवर्त बन जाता है। उसी आवर्त्त से निकले हुए वायु के सङ्घर्ष से, वह वायु 'मृणाल - तन्तु' द्वारा 'ब्रह्म-रन्ध्र' से निकल कर 'ब्रह्म'की ओर चलना प्रारम्भ करता है, जिससे धीरे-धीरे 'ब्रह्म-रन्ध्र' का खुलना आरम्भ हो जाता है और 'ब्रह्म-रन्ध्र' में से एक प्रकार के श्वेत वाष्प का प्रादुर्भाव होता है।

'ब्रह्म-तन्तु' के दर्शन के लिए 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता

जिस प्रकार एक अग्नि-कण में शुष्क तृणादि रख कर फूंकने से, अग्नि का समूह बन जाता है और यदि उस अग्नि-कण को, उपेक्षा-बुद्धि से छोड़ दो, तो वह बुझ जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव का पूर्वोक्त तन्तु द्वारा 'ब्रह्म' के साथ सम्बन्ध है। उस तन्तु को जो सँभाल सकते हैं, वे तन्तु द्वारा 'ब्रह्म' के साथ एकता को प्राप्त कर, 'शिव-रूप' बन सकते हैं। यदि उस तन्तु को उपेक्षा कर छोड़ देते हैं, तो जीव पशु बन कर ८४ लाख योनियों में घूमता रहता है। 'ब्रह्म - रन्ध्र' से निकला हुआ जो श्वेत वाष्प है, उसको 'ब्रह्म-तन्तु' अथवा 'पर-तन्तु' कहते हैं। वह तन्तु अत्यन्त सूक्ष्म-रूप में सब जीवों में विद्यमान है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि अभ्यास की दृढ़ता से वह दृष्टि-गोचर भी हो सकता है। इस तन्तु को जिससे जाना जा सकता है, उसका ही नाम 'तन्त्र' है। 'तन्त्र' को जाननेवाले 'तान्त्रिक' कहलाते हैं।

'क्रम-दीक्षा' की पूर्णता के बिना कोई यथार्थ तान्त्रिक नहीं कहा जा सकता। केवल एक-आध 'तन्त्र-पुस्तक' के अवलोकन से तथा एक-आध 'मन्त्र' के उपदेश से ही कोई तान्त्रिक कहलाने का अधिकारी नहीं होता। यदि साधक 'क्रम-दीक्षा' के नियम से बहुत नहीं, तो थोड़ा भी परिचित हो और भाग्य-वश उसे सद्-गुरु की प्राप्ति हो जाए, तो अल्प - काल में ही वह साधक अपना कार्य-साधन कर सकता है। लिखा भी है —**"सु-गुरोः प्रसादान्निमेष-मात्रेण सु-साध्य एव।"** परन्तु ऐसे सद् - गुरु की प्राप्ति असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्यमेव है। यतः ऐसे महा-पुरुष को जन-समाज अच्छा नहीं लगता। वह सदा एकान्त-सेवी होता है। भाग्योदय से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। बात-की-बात में क्रम का निर्देश कर सकता है और साधक योग्य तान्त्रिक हो, तो तत्-क्षण में गुरूपदिष्ट 'क्रम' ग्रहण कर सकता है और अभ्यास करते-करते तदनुसार शीघ्र अथवा कालान्तर में 'शिवत्व' को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार वृषभ की नासा-रज्जु पकड़कर, बैल को जिधर चाहे मनुष्य उधर ले जा सकता है और वृष बिना किसी हठ के चुपचाप रस्सी पकड़नेवाले के पीछे चलता रहता है, उसी प्रकार सिद्ध

तान्त्रिक महात्मा, जिसको कि पूर्वोक्त 'ब्रह्म-तन्तु' का यथार्थ ज्ञान है, प्रत्येक जीव और देवता में विद्यमान उस 'ब्रह्म-तन्तु' को अपने 'तन्तु-बल' से खींच कर, देवताओं को और सर्व-जीव मात्र को अर्थात् आब्रह्म-स्तम्भ - पर्यन्त स्थावर - जङ्गम रूप को अपने अधीन कर लेता है। लिखा भी है—**'दैवाधीनं जगत् सर्वं, मन्त्राधीनाश्च देवताः।'**

केवल मन्त्र जपने से कुछ नहीं होता। उसके यथार्थ रहस्य को जानने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रत्येक तन्त्र-ग्रन्थ में लिखा है कि, अमुक मन्त्र से अमुक फल की प्राप्ति होती है। साधक इस लालच से विना 'मन्त्र-रहस्य' जाने ही 'मन्त्र' जपना प्रारम्भ कर देता है। जब कोरे जप से कोई सिद्धि हाथ नहीं आती, तब वह 'तन्त्र-शास्त्र' को झूठा प्रमाणित करने लगता है! इसी कारण 'तन्त्र-शास्त्र' लुप्त-प्राय हो रहा है। यदि 'सद् - गुरु - सम्बन्ध' द्वारा 'मन्त्र - रहस्य' जान कर, पूर्ण विश्वास के साथ अभ्यास किया जाय, तो विदित होगा कि बड़े - बड़े पाश्चात्य विद्वानों का जो 'साइन्स' है, उससे यह 'मन्त्र-शास्त्र' बहुत उच्च श्रेणी का है। इस विषय में सर जॉन उडरफ यूरोपियन होते हुए भी पूर्णतया सहमत हैं।

जितने भी लोग 'द्विज' शब्द-वाच्य हैं, वे सब **'सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता, न शैवा न च वैष्णवाः। आदि-शक्तिमुपासन्ते, गायत्रीं वेद-मातरम्।'** इस वचन के अनुसार 'शाक्त' कहे जाते हैं। अतएव अनुभवी सद्-गुरु द्वारा 'क्रम - दीक्षा' प्राप्त करके, 'शिवत्व - प्राप्ति' की साधना में मन लगाकर हम लोग सिद्ध तान्त्रिक बन सकें, तो इस देश का पुनर्जीवन हो सकता है। अतएव इस समय जहाँ-जहाँ 'कौल' और 'शाक्त' विद्यमान हैं, उनको छिप कर बैठने का समय नहीं है। इस विषय में 'महा-निर्वाण तन्त्र' भी लिखता है—

अतएव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ, कुलाचारोऽपि सत्येन कर्तव्यो व्यक्त-भावतः।
गोपनाद्धीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना, तस्मात् प्रकाशनः कुर्यात् कौलिकः कुल-साधनम्!

'गोप्यं पुनर्गोप्यं जननी-जार - गर्भ-वत्'—इत्यादि वचनान्तरों का आशय यह है कि, 'मन्त्र' और उनका 'रहस्य' प्रकाश - योग्य नहीं है। अर्थात् मन्त्र और उनके रहस्य को श्रीगुरु-मुख द्वारा ही अवगत करना चाहिए। मत - मतान्तर और उनका रहस्य प्रकाशन योग्य है, न कि मन्त्र और उनका रहस्य।

'क्रम-दीक्षा' द्वारा 'शिव-तत्त्व' की प्राप्ति

श्रीविद्या 'पञ्च-दशाक्षरी' का उपासक 'शिव-तत्त्व' को प्राप्त होता है, पुनर्जन्म को नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि 'पञ्च-दशाक्षरी' के कूट-त्रय में १ कादि, २ हादि, ३ सादि—इन तीन विद्याओं की समष्टि होती है। इन विद्याओं की सद्गुरु-सङ्केत द्वारा 'क्रम-पूर्वक उपासना' करने से पुनर्जन्म नहीं होता और उपासक निःसन्देह शिव - तत्त्व को प्राप्त होता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मनुष्य मात्र के आधार पूर्वोक्त तीन चक्र हैं। इन तीनों चक्रों की यथोक्त शुद्धि यदि कोई कर सकता है, तो उसे 'शिव-तत्त्व' की प्राप्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसमें भी 'महा-षोडशी' में 'पञ्च-दशी विद्या' के गर्भित होने से बात ही दूसरी हो गई। यथा, कहा भी है—

वक्त्र-कोटि-सहस्रैस्तु जिह्वा-कोटि-शतैरपि। वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी॥ (परा-तन्त्र)

आम्नायों के मन्त्रों का शरीरस्थ षोडश आधार के सन्दर्भ में विभाजन

अब प्रत्येक आम्नाय के 'मूल-मन्त्र' षोडश भागों में किस प्रकार विभक्त हैं, इसका क्रम निर्दिष्ट किया जाता है—

१ अधराम्नाय में 'आर्य तारा का मूल-मन्त्र' षोडशाक्षरी होने से वह प्रत्येक वीज के एक-एक भाग में बँट जाएगा और उसके षोडश भाग हो जाएँगे।

२ दक्षिणाम्नाय में 'दक्षिण कालिका का मूल-मन्त्र', द्वा-विंशाक्षरी में प्रत्येक वीज के एक-एक भाग और मध्य के 'दक्षिणे कालिके' इस सम्बोधन के एक भाग और अन्त्य के 'स्वाहा' के एक भाग में बँट जाने से षोडश भाग हो जाएँगे।

३ पश्चिमाम्नाय में 'वज्र-कुब्जिका' और 'अघोर-कुब्जिका' दोनों के मूल-मन्त्र, द्वा-त्रिंशाक्षरी होने से दो-दो अक्षरों को एक-एक भाग में बाँट देने से षोडश भाग सम्पन्न हो जाएँगे।

४ उत्तराऽऽम्नाय में 'काम-कला गुह्य-काली' का मूल-मन्त्र, अष्टादशाक्षरी है। बीच के सम्बोधन के 'कालि' दो अक्षर एक भाग में बाँट देने से तथा शेष सब अक्षरों को प्रत्येक अक्षर के प्रत्येक भाग में विभक्त कर देने से षोडश भाग होंगे।

५ पूर्वाम्नाय में 'भुवनेश्वरी' का मूल-मन्त्र, पञ्चाक्षरी होने से पाँचों बीजाक्षरों के स्वर-व्यञ्जन और नाद-विन्दु के विभाग कर देने से षोडश भाग बनाए गए हैं।

६ ऊर्ध्वाम्नाय में 'महा-षोडशी' के मध्य ३ कूटाक्षरी वीजों के प्रत्येक कूट का एक - एक भाग करके ३ भाग और १३ वीजाक्षरों के प्रत्येक वीजाक्षर का एक-एक भाग करके त्रयोदश भागों में विभक्त कर देने से षोडश भाग हो जाएँगे।

लघु साम्राज्य-मेधा में 'गायत्री' का 'सम्यगाप्ता-क्रम' और दीक्षा का प्रत्येक कूट रखकर, प्रत्येक पाद-सहित प्रत्येक कूट का एक-एक भाग करके षोडश भाग बनाए गए हैं।

प्रत्येक आम्नाय के मूल-मन्त्रों के बीजाक्षरों में छहों आम्नायों के विभाग होते हैं और मन्त्रों का अर्थ भी तत्तत् - प्रकार से होता है। यह सब अर्थात् मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य और मन्त्र-सङ्केत यथार्थ में विशद - रूप से गुरु-वक्त्र द्वारा ही समझ में आ सकता है। गुरु-देव व्याख्या-द्वारा सुगम मार्ग से अवगत करा सकते हैं।

क्रम-दीक्षा' के द्वादश भेद

क्रम-दीक्षा मुख्यतः द्वादश प्रकार की है। यथा—१ विद्या-क्रम, २ काद्याम्नाय-क्रम, ३ हाद्याम्नाय-क्रम, ४ हादि पञ्च-क्रम, ५ कादि षोडश-क्रम (इसको श्री विद्या कादि-क्रम भी कहते हैं), ६ हादि नव-क्रम, ७ कादि नव-क्रम, ८ सादि-क्रम, ९ श्रीविद्या चक्र-क्रम (इसको श्रीविद्या सादि - क्रम भी कहते हैं), १० महा-क्रम, ११ पूर्ण-क्रम और १२ लघु-क्रम।

इन क्रमों में विद्या-क्रम छः प्रकार का है—१ पूर्वाम्नाय - विद्या - क्रम, २ दक्षिणाम्नाय विद्या-क्रम, ३ पश्चिमाम्नाय विद्या - क्रम, ४ उपाम्नाय विद्या - क्रम, ५ उत्तराऽऽम्नाय विद्या - क्रम और ६ ऊर्ध्वाम्नाय विद्या - क्रम (इसको ऊर्ध्वाम्नाय हादि - क्रम भी कहते हैं)। 'बृहद् वडवानल तन्त्र' में कहा भी है—

सर्वाम्नाय - प्रभेदेन षड्धा विद्या - क्रमं स्मृतम्। पूर्वाम्नाये चोन्मनी च पूर्णेशी भुवनेश्वरी ॥
द्वीपं शाम्भवकं दिव्यं लिङ्ग-मूले व्यवस्थितम्। आद्या श्यामा दक्षिणा च दक्षिणाम्नाय-वर्त्मनि ॥
संवर्त-शाम्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम्। पश्चिमे कुब्जिका वज्र-कुब्जिकाऽघोर - कुब्जिका ॥
सर्वाधिकार - विद्याख्यं शाम्भवं चतुरन्वयम्। उप - मार्गे महा - पूर्वा काली लक्ष्मी सरस्वती ॥

चामुण्डा च महा-विद्येश्वराख्यं शाम्भवं हृदि । उत्तरे सिद्धि-लक्ष्मीश्च महा - सिद्धि करालिका ।।
काम-कला गुह्य-काली हंस-शाम्भव-कण्ठजम् । ऊर्ध्वे बाला पञ्च-दशी षोडशी पर-शाम्भवम् ।।
आज्ञा-चक्रे स्थितं दिव्यं श्रीविद्या-क्रम-संयुतम् ।।

१ विद्या-क्रम

(१) पूर्वाम्नाय-क्रम में उन्मनी का त्र्यक्षरी मन्त्र, पूर्णेश्वरी का षडक्षरी मन्त्र और भुवनेश्वरी का पञ्चाक्षरी मन्त्र लेकर, 'स्वाधिष्ठान-चक्र' में द्वीपेश्वर शाम्भव और द्वीपेश्वर कूट लेकर पूर्वाम्नायी बन कर पूर्वाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त हो जाता है ।

(२) दक्षिणाम्नाय-क्रम में आद्या काली का त्र्यक्षरी या षोडशाक्षरी मन्त्र, श्यामा काली का त्र्यक्षरी मन्त्र, दक्षिण काली का द्वा-विंशाक्षरी मन्त्र लेकर 'मणिपुर - चक्र' में संवर्त कूट और संवर्तेश्वर शाम्भव लेकर दक्षिणाम्नायी होकर दक्षिणाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त हो जाता है । मतान्तर में पूर्वाम्नाय 'स्वाधिष्ठान-चक्र' में संवर्त, दक्षिणाम्नाय 'मणिपुर चक्र' में द्वीपेश शाम्भव भी माना गया है ।

(३) पश्चिमाम्नाय-क्रम में कुल्लिका समया का द्वा - त्रिंशाक्षरी मन्त्र, वज्र - कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र और अघोर-कुब्जिका द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेकर चतुरन्वय शाम्भव, 'विद्या-चक्र' में चार कूट लेकर पश्चिमाम्नायी होकर पश्चिमाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त कर लेते हैं ।

(४) उपाम्नाय-क्रम में निम्न-लिखित रहस्य है । बहुत लोगों को केवल छः ही आम्नायों की भ्रान्ति है । अन्य चार ग्राम्नाय भी हैं । तन्त्रों में दश आम्नाय होते हैं । शिव का उत्तर - वक्त्र और पूर्व-वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी गणना 'ईशानाम्नाय' में की गई है । इस आम्नाय की नायिका सप्तशती-वर्णित दश-वक्त्रा, दश-भुजा और दश-पादा महा-काली है । यथा—

खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः, शङ्खं संदधतीं करैस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग-भूषावृताम् ।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा-कालिकां, यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।।

पूर्व-वक्त्र और दक्षिण-वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उस विद्या की गणना 'आग्नेयाऽऽम्नाय' में की गई है । इस आम्नाय की नायिका 'सप्तशती' - वर्णित अष्टादश - भुजी महा-लक्ष्मी है, यथा——

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां, दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुरा - भाजनम् ।
शूलं पाश - सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां, सेवे सैरिभ - मर्दिनीमिह महा - लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ।।

दक्षिण और पश्चिम - वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उस विद्या की गणना 'नैर्ऋत्याऽऽम्नाय में की गई है । इसमें षट्-कर्मादि अनेक प्रयोगों तथा यक्षिणी, अप्सरा, चेटकादि साधनों का वर्णन किया गया है, अतएव इस विद्या की कोई विशेष नायिका नहीं है । इस आम्नाय को सावर-तन्त्र मानते हैं । 'क्रम-दीक्षा' में भी इस नैर्ऋत्याऽऽम्नाय को क्रम से नहीं लेते हैं ।

पश्चिम - वक्त्र और उत्तर - वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी गणना 'वायव्याम्नाय' में की जाती है । इस आम्नाय की नायिका 'सप्तशती'-वर्णित अष्ट-भुजा महा-सरस्वती है, जिसका ध्यान अधो-निर्दिष्ट प्रकार का है—

घण्टां शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः शायकं, हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त - विलसच्छीतांशु - तुल्य-प्रभाम् ।
गौरी - देह - समुद्भवां त्रि - नयनामाधार-भूतां, महा-पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ।।

उपाम्नाय-क्रम में ईशानाम्नाय महा-काली का चतुरक्षरी मन्त्र, आग्नेयाम्नाय महा - लक्ष्मी का चतुरक्षरी मन्त्र और वायव्याम्नाय महा - सरस्वती का चतुरक्षरी मन्त्र तथा पश्चिमाम्नायांतर्गत **चामुण्डा** का निर्वाण मन्त्र लेकर 'अनाहत - चक्र' में विच्चेश्वर शाम्भव और विच्चेश्वर कूट लेकर 'चामुण्डोपासक' कहलाए जाते हैं। इस क्रम को बङ्गाल के सु-प्रसिद्ध साधक-प्रवर श्री रामकृष्ण परमहंस ने ग्रहण किया था।

(५) उत्तराम्नाय विद्या - क्रम में **सिद्धि - लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **सिद्धि - कराली** का अर्थात् **दशानना गुह्य - काली** की भरतोपासिता षोडशाक्षरी, **काम - कला गुह्य - काली** का अष्टादशाक्षरी मन्त्र लेकर 'विशुद्ध -चक्र' में हंसेश्वर शाम्भव और हंसेश्वर कूट लेकर उत्तराम्नायी बनकर उत्तराम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त किया जाता है, किन्तु षडन्वय शाम्भव पश्चिमाम्नायात्मक और 'अनाहत - चक्र' का विच्चेश्वर शाम्भव उत्तराम्नायात्मक में ही माने गए हैं। यह तत्त्व यथार्थ में गुरु - मुख से समीचीनतया अवगत हो सकता है।

(६) ऊर्ध्वाम्नाय में **बाला** का त्र्यक्षरी मन्त्र, **श्रीविद्या** का पञ्च - दशाक्षरी और षोडशाक्षरी लेकर 'आज्ञा - चक्र' में परेश्वर शाम्भव और परेश्वर कूट लेकर ऊर्ध्वाम्नायी बनते हैं। इसमें कोई लोपा-मुद्रा पञ्च - दशी लेकर लोपामुद्रा षोडशी लेते हैं। कोई षोडशी में महा - षोडशी ही लेते हैं। जो लोग महा-षोडशी लेते हैं, वे लोग पूर्णाभिषेक चतुरन्वय अथवा षडन्वय शाम्भव और ऊर्ध्वाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' लेते हैं। इन आम्नायों में अपने-अपने गुरु-सम्प्रदाय से कोई तो शाम्भव दीक्षा के पीछे 'सर्वाधिकार-दीक्षा' लेते हैं और कोई 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के पीछे 'शाम्भव-दीक्षा' ग्रहण करते हैं।

२ काद्याम्नाय-क्रम

'काद्याम्नाय - क्रम' में कादि - विद्या '**गुह्य - काली**' है। '**गुह्य - काली**' में इन सब विद्याओं की समष्टि न होकर, गुह्य - काली आद्य विद्या 'कुब्जिका' में समष्टि होती है। ऐसा क्यों होता है ? इस विषय में महा - क्रम, कुल - क्रम अर्थात् 'अवरोह - क्रम' है। अतएव अन्य सब विद्याओं का कर - न्यास अंगुष्ठ से प्रारम्भ होता है, परन्तु 'कुब्जिका विद्या' का कर - न्यास कनिष्ठिका से प्रारम्भ होता है।

'परा-तन्त्र' के वचनानुसार 'कुब्जिका' 'कुल-कुण्डलिनी' है, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

काद्याम्नाय - क्रमं देवि ! वक्ष्यामि शृणु सुव्रते ! गुह्य-काली च भुवना कुब्जिका वज्र-कुब्जिका ।।
अघोर - कुब्जिका पश्चात् शाम्भवं चतुरन्वयम् । सर्वाधिकारं देवेशि ! लघु - पूर्णाभिषेचनम् ।।

यह वृहद् 'बड़वानल तन्त्र' का वचन है। इस पर उपासक स्वयं मनन कर सकते हैं।

'काद्याम्नाय - क्रम' में भरतोपासिता दश - **वक्त्रा गुह्य - काली** का षोडशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—

दश-वक्त्रा षोडशार्णा चतुष्पञ्चाशदशदोर्युता, सर्वासां गुह्य-कालीनां सा वै मुख्यतया स्मृता ।।

इस 'महा-काल-संहिता' के वचन से इस आम्नाय-क्रम में '**गुह्य-काली**' की एक ही विद्या ग्रहण की जाती है, इसी से इस विद्या को बहुत से उपासक ग्रहण करते हैं। परन्तु—

यथा काम-कला-काली गुह्य-काली यथा द्विज ! यथा छिन्ना तथा तारा वज्र-कापालिनी यथा ।
सिद्धि-लक्ष्मीः तथा देवी विशेषो नास्ति कश्चन, एकैव पूजा विज्ञेया प्रयोगाश्च तथा द्विज ! ।।

इस 'कालानल तन्त्र' के वचन से **सिद्धि - लक्ष्मी** 'उत्तराम्नाय' की आद्य - विद्या होने से, 'काद्याम्नाय - क्रम' की जो आद्य - विद्या है, उसमें सिद्धि - कराली अर्थात् भरतोपासिता **गुह्य - काली** न लेकर **सिद्धि - लक्ष्मी** लेने की भी किसी - किसी की प्रथा है। इसके अनन्तर द्वितीय विद्या में, 'माया'-वीज ही 'भुवनेश्वरी' का वीज निश्चित होने के कारण **भुवनेश्वरी** का 'एकाक्षरी मन्त्र' ही लेते हैं। तब **कुब्जिका-समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र और **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र ग्रहण करते हैं। इन तीन विद्याओं को **'त्रि-रत्न-विद्या'** कहते हैं।

मतान्तर में **कुब्जिका-समया, घोर-कुब्जिका, कर्म - कुब्जिका, वीर - कुब्जिका, वज्र - कुब्जिका** तथा **अघोर-कुब्जिका** का भी द्वा - त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेते हैं। इन पाँच विद्याओं को **कुब्जिका पञ्च - रत्न - विद्या** कहते हैं। जो लोग **त्रि-रत्न-विद्या** लेते हैं, वे चतुरन्वय शाम्भव, और जो लोग **पञ्च - रत्न - विद्या** लेते हैं, वे षडन्वय शाम्भव लेकर 'सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण कर 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। 'वृहद् बड़वानल तन्त्र' में 'लघु-पूर्णाभिषेचनम्' जो लिखा है, उसका तात्पर्य यह है कि लघु-पूर्णाभिषेचन में, सुधा-पूर्ण घट में सजीव मीन रखने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ पर "महा-पूर्णाभिषेचनम्" इस प्रकार लिखा है, वहाँ पर सजीव मीन रखकर ही पूर्णाभिषेक लिया जाता है, परन्तु कलियुग में सजीव मीन रखकर ही पूर्णाभिषेक देनेवाले गुरुओं के दुष्प्राप्य होने के कारण, उसका प्रतिनिधि 'आर्द्रक' - खण्ड रखकर अभिषेक कर देने की प्रथा है।

'काद्याम्नाय-क्रम'––(१) शिखा-स्वच्छन्द ललित-भैरव-मत तथा (२) नवात्म-भैरव-मत से दो प्रकार का है। इसका भेद उपासक-प्रवर नेपाल-निवासी श्रीमान् मेजर जनरल धन-शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा द्वारा रचित 'परा-महिम्न स्तोत्र' से पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं।

३ हाद्याम्नाय-क्रम

'हाद्याम्नाय-क्रम' में हादि-विद्या सुन्दरी है। यह 'ब्रह्म-रन्ध्र-चक्र' की नायिका है। यह क्रम अकुल-क्रम अर्थात् आरोह-क्रम होने से सब विद्याओं की सुन्दरी में ही समष्टि होती है।

हाद्याम्नाय-कर्म वक्ष्ये भोग-मोक्ष-प्रदायकम्। दक्षिणा-कालिका पश्चात् महोग्र - तारिणी ततः॥
बाला पञ्च-दशी पश्चात् षोडशी तदनन्तरम्। षडन्वयं शाम्भवं च रश्मि - हीनं च शेचनम्॥

'वृहत् बड़वानल तन्त्र' के इस वचन के अनुसार 'हाद्याम्नाय - क्रम' में **दक्षिण काली** का द्वाविंशाक्षरी मन्त्र लिया जाता है। मतान्तर में इस विद्या के बदले **आद्या - काली** का षोडशाक्षरी मन्त्र लेने की भी प्रथा है। इसके अनन्तर **महोग्र-तारा** का सार्द्ध पञ्चाक्षरी मन्त्र, **बाला** का और पञ्च-दशाक्षरी **श्रीविद्या** लिया जाता है। सार्ध पञ्चाक्षरी-रूपा **महोग्र-तारा** को **महा-नील-सरस्वती** भी कहते हैं। इनके बाद बाला त्र्यक्षरी, श्रीविद्या षोडशाक्षरी, रश्मि-रहित षडन्वय शाम्भव लेकर 'सर्वाधिकार - दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। षडन्वय शाम्भव की 'रश्मि-विद्या' होती है। यह 'रश्मि-विद्या' महा-क्रम और पूर्ण-क्रम में होती है। अन्य क्रम में नहीं होती। इसकी व्याख्या आगे दी जाएगी।

हादि-क्रम में तीन मत हैं—(१) दक्षिणा-मूर्ति-मत, (२) आनन्द-भैरव-मत और (३) हयग्रीव-मत। हयग्रीव-मत को ही 'लोपामुद्रा-मत' भी कहते हैं।

बाला-त्रिपुरा और **त्रिपुर - भैरवी** एक ही विद्या हैं। मन्त्र में कुछ भेद अवश्य है, रूप और आयुध एक ही हैं। आभूषण में तनिक भेद है कि 'त्रिपुर-भैरवी' की मुण्ड - माला है, 'बाला - त्रिपुरा' की मुण्ड-माला नहीं है। 'त्रिपुरा-सार-समुचय' में भी लिखा है––

भैरवीयमुदिता कुल - पूर्वा, देशिकैर्यदि भवेत् कुल - पूर्वा ।
सैव शीघ्र फलदा भुवि विद्या, पश्यते पशु - जनेष्वपि गोप्या ।।

यह 'बाला-त्रिपुरा' और 'त्रिपुर-भैरवी' पश्चिमाम्नाय में भी पूजिता होती हैं । नेपाल को नेवार जाति में बाला-त्रिपुरा' का 'त्र्यक्षरी मन्त्र', पश्चिमाम्नाय मत से लेने की प्रथा है ।

४—हादि-पञ्च-क्रम

'हादि-पञ्च-क्रम' के विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

**हादि-पञ्च-क्रमं वक्ष्ये दक्षिणा-कालिका तथा । तारा छिन्ना च वगला महा-त्रिपुर-सुन्दरी ।।
परेश्वर - शाम्भवं च लघु - पूर्णाभिषेचनम् । इदन्तु भक्तिदं दिव्यं क्रमं सर्वार्थ - साधकम् ।।**

अर्थात् 'हादि-पञ्च-क्रम' में **दक्षिणा** काली का द्वा-विंशाक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्द्ध पञ्चाक्षरी तथा **छिन्नमस्ता** के बहुत मन्त्रों में से गुरु-परम्परागत एक मन्त्र लेकर, उसके बाद **वगलामुखी** का मन्त्र लेना चाहिए । वगला-मुखी के भी बहुत मन्त्र हैं । उनमें से गुरु-परम्परागत एक मन्त्र लेकर, **श्रीविद्या** का पञ्च-दशाक्षरी अथवा श्रीविद्या का बाला-षडक्षरी मन्त्र लेकर, परेश्वर शाम्भव और परेश्वर कूट लेकर 'लघु-पूर्णाभिषेक' लिया जाता है ।

५—कादि-षोडश-क्रम

'कादि-षोडश-क्रम' के विषय में तन्त्र-वचन है कि—**कामेश्वरी, भग-मालिनी, नित्य - क्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्नि-वासिनी, महा-विद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुल-सुन्दरी, विमला, नील - पताका, विजया, सर्व-मङ्गला, ज्वाला-मालिनी, विचित्रा** और **श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी** के मन्त्र लेकर 'लघु-पूर्णाभिषेक' लेते हैं । इस क्रम का 'तन्त्र-राज-तन्त्र' में विशद-रूप से वर्णन किया गया है ।

६—हादि-नव-क्रम

'हादि-नव-क्रम' के विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

**हादि-नव-क्रमं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा । श्रीमद्-एकजटा पश्चाच्छ्रीमन्नील - सरस्वती ।।
महोग्र-तारिणी पश्चाद् बाला पञ्च-दशी तथा । षोडशी शाम्भवं रश्मि - हीनं षडन्वयं स्मृतम् ।।
सर्वाधिकार तत्रैव लघु - पूर्णाभिषेचनम् । इदं मुक्ति - प्रदं दिव्यं क्रमं शङ्कर - साधितम् ।।**

अर्थात् इस क्रम में **आद्या** का त्र्यक्षरी या दशाक्षरी या षोडशाक्षरी मन्त्र (इनमें विशेष करके 'त्र्यक्षरी मन्त्र' ही लेते हैं) । **श्यामा काली** का त्र्यक्षरी अथवा नवाक्षरी, **दक्षिणा कालिका** का द्वा-विंशाक्षरी, **एक-जटा** का त्र्यक्षरी, **नील-सरस्वती** का सार्द्ध चतुरक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्द्ध - पञ्चाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी, **श्रीविद्या** का पञ्च-दशाक्षरी और श्रीविद्या का महा-षोडशाक्षरी मन्त्र लेकर, तब षडन्वय शाम्भव, 'सर्वाधिकार-दीक्षा' और 'लघु-पूर्णाभिषेक' लिया जाता है । इस क्रम को स्वयं शङ्करजी ने ग्रहण किया था ।

७—कादि-नव-क्रम

इसके विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

**कादि-नव-क्रमं वक्ष्ये ! प्रत्यक्ष-फल-दायकम् । सिद्धि-लक्ष्मी कराली च श्रीमत्-काम-कलात्मिका ।।
उन्मनी चान्नपूर्णा च तथा श्रीभुवनेश्वरी । कुब्जिका वज्र-कुब्जा च श्रीमहा-घोर-कुब्जिका ।।
रश्मि-हीनं शाम्भवं च पश्चात् सर्वाधिकारकम् । लघु-पूर्णाभिषेकं च क्रमं शक्रादि - साधितम् ।।**

अर्थात् इस क्रम में **सिद्धि-लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **सिद्धि-कराली** अर्थात् भरतोपासिता **दशानना गुह्य-काली** का षोडशाक्षरी, **काम-कला गुह्य-काली** का अष्टादशाक्षरी, **उन्मनी** का त्र्यक्षरी, **अन्नपूर्णा** का विंशाक्षरी, **पूर्णेश्वरी** का षडक्षरी, **भुवनेश्वरी** का पञ्चाक्षरी, **कुब्जिका-समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वीर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी तथा **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेकर षडन्वय शाम्भव और सर्वाधिकार-दीक्षा प्राप्त करके लघु-पूर्णाभिषेक लेते हैं ।

८—सादि-क्रम

इस क्रम के विषय में 'बृहत् वड़वानल तन्त्र' का वचन है—

सादि - क्रमं सम्वरौधि-मतं दिव्यं शृणु प्रिये ! पन्नगेशी वज्र - पूर्णा योगिनी विजयेश्वरी ॥
एक-जटा च नीला च महा - नील - सरस्वती । उग्र-तारा महोग्रा च महाऽऽर्या-तारिणी तथा ॥
नवात्म - शाम्भवं ज्ञेयं ततः पूर्णाभिषेचनम् । इयं तु मुक्तिदा विद्या चीन - मार्गेण पूजिता ॥

अर्थात् इस क्रम को 'सम्वरौधि क्रम' कहते हैं । 'चीन' और 'महा - चीन - क्रम' साध्य होने के कारण बौद्ध-मत में इस क्रम का विशेष प्रचार है । पाठकों के लिए विशेष उपयोगी नहीं हो सकता । इस क्रम को वशिष्ठ ऋषि जी ने ग्रहण किया था ।

९—श्रीविद्या-चक्र-क्रम

'श्रीविद्या-चक्र-क्रम' तीन प्रकार का है—(१) हयग्रीव - क्रम, (२) आनन्द - भैरव - क्रम और (३) दक्षिणा-मूर्त्ति-क्रम । **१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेशी, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ त्रिपुर-वासिनी, ५ त्रिपुरा, ६ श्री-त्रिपुर-मालिनी, ७ त्रिपुरा-सिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा, ९ श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी, १० श्रीविद्या षोडशाक्षरी**— यह 'हयग्रीव-क्रम' है और शुष्क-भाव में ही होता है । आर्द्र-भाव में नहीं होता ।

१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेशी, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ त्रिपुर-वासिनी, ५ त्रिपुरा, ६ श्रीत्रिपुर - मालिनी, ७ त्रिपुरा-सिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा, ९ त्रिपुर-भैरवी, १० श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी, ११ श्रीविद्या षोडशाक्षरी— यह 'आनन्द-भैरव-क्रम' है ।

१ त्रिपुरा २ त्रिपुरेशिनी, ३ त्रिपुरेशी, ४ त्रिपुर-सुन्दरी, ५ त्रिपुर-वासिनी, ६ त्रिपुरा, ७ श्री-त्रिपुर - मालिनी, ८ त्रिपुरा - सिद्धा, ९ त्रिपुराम्बा, १० त्रिपुर - भैरवी ११ श्रीविद्या पञ्च - दशाक्षरी, १२ लघु - पाशुपत, १३ मध्यम - पाशुपत, १४ महा - पाशुपत, १५ श्रीविद्या षोडशाक्षरी, १६ षडन्वय शाम्भव, १७ पूर्णाभिषेक, १८ सर्वाधिकार दीक्षा, १९ श्रीविद्या सप्तदशी—यह 'दक्षिणा-मूर्ति-क्रम' है ।

१०—महा-क्रम

महा - क्रममिमं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा । एक-जटा च नीला च महोग्रा शारदा तथा ॥
श्रीबाला-त्रिपुरा श्रीमद्-बाला-त्रिपुरसुन्दरी । सिद्धि-लक्ष्मीः तथा सिद्धि-कराली काम-कालिका ॥
उन्मनी चान्नपूर्णा च भुवनेशी च कुब्जिका । वीर-कुब्जा तथा वज्र-कुब्जिका परमेश्वरी ॥
पञ्च - दशी षोडशी च श्रीमहा - षोडशाक्षरी । षडन्वय-शाम्भवं च महा - पूर्णाभिषेचनम् ॥
पाशुपत - त्रयं चैव महा - षोढाख्य-न्यासकम् । अथवा भुवनान्ते च कुब्जिका वज्र-कुब्जिका ॥
अघोर - कुब्जिकान्ते च शाम्भवं चतुरन्वयम् । सर्वाधिकारं तत्रैव लघु - पूर्णाभिषेचनम् ॥

'बृहत् वड़वानल तन्त्र' के उपर्युक्त वचन के अनुसार इस क्रम में **आद्या** का त्र्यक्षरी अथवा द्वादशाक्षरी या षोडशाक्षरी, **श्यामा** का त्र्यक्षरी, **दक्षिणा कालिका** का विंशाक्षरी, **एक-जटा** का त्र्यक्षरी,

नील - सरस्वती का सार्ध-चतुरक्षरी, महोग्र - तारा का सार्ध - पञ्चाक्षरी, शारदा का एकाक्षरी, बाला का त्र्यक्षरी और षडक्षरी, सिद्धि - लक्ष्मी का नवाक्षरी, भरतोपासिता सिद्धि - कराली का षोडशाक्षरी, काम - कला गुह्य - काली का अष्टादशाक्षरी, उन्मनी का त्र्यक्षरी, अन्नपूर्णा का विंशाक्षरी अथवा पूर्णेशी का षडक्षरी, भुवनेश्वरी का एकाक्षरी, त्र्यक्षरी अथवा पञ्चाक्षरी, कुब्जिका - समया का द्वा-त्रिंशाक्षरी, वीर-कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, वज्र-कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, श्रीविद्या का पञ्च-दशाक्षरी और षोडशाक्षरी, श्रीविद्या महा-षोडशाक्षरी षडन्वय शाम्भव, महा-पूर्णाभिषेक, लघु-पाशुपत, मध्यम-पाशुपत, महा-पाशुपत, महा-षोढान्यास और 'सर्वाधिकार दीक्षा' लेते हैं।

यह क्रम दो प्रकार का है। प्रथम प्रकार में श्रीमहा-षोडशी में सर्व-विद्याओं की समष्टि करके, ऊर्ध्वाम्नायी होकर 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। द्वितीय प्रकार में अघोर-कुब्जिका में सब विद्याओं की समष्टि करके पश्चिमाम्नायी होकर पश्चिमाम्नाय का 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं।

पहले प्रकार में भुवनेश्वरी का मन्त्र लेकर, कुब्जिका - समया का द्वा - त्रिंशाक्षरी अथवा कर्म - कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, घोर-कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, वीर - कुब्जिका का द्वा - त्रिंशाक्षरी (यहाँ 'वृहद् बड़वानल' तन्त्रोक्त कुब्जिका-पद से तीनों ही कुब्जिकाओं का ग्रहण होता है)। वज्र - कुब्जिका, अघोर-कुब्जिका और चतुरन्वय शाम्भव, इस प्रकार लिखा है। तथापि षडन्वय शाम्भव लेने की ही प्रथा है। सर्वाधिकार-दीक्षा, 'पूर्णाभिषेक' और कुब्जिका का 'षोढा-न्यास' भी लेते हैं।

११--पूर्ण-क्रम

इस क्रम के विषय में 'वृदद् बड़वानल तन्त्र' में निम्न-लिखित प्रकार से लिखा है--

पूर्ण - क्रममहं वक्ष्ये पर-ब्रह्म - स्वरूपकम्। आद्या श्यामा दक्षिणा च श्रीमदेक - जटा तथा ॥
नीला सरस्वती चैव महोग्रा - तारिणी तथा। शारदा त्रिपुरा बाला - त्रिपुर - सुन्दरी ॥
सिद्धि-लक्ष्मीः सिद्धि-पूर्वा कराली सिद्धि-कालिका। सिद्धि-कापालिनी श्रीमद्-गुह्या काम-कलात्मिका ॥
उन्मनी च अन्नपूर्णा च भुवना भुवनेश्वरी। श्रीमद्-भुवन-पूर्वा च सुन्दरी सर्व-सिद्धिदा ॥
महा-काली महा-लक्ष्मी महा-पूर्वा सरस्वती। चामुण्डा कुब्जिका घोर-कुब्जिका वीर-कुब्जिका ॥
वज्र-पूर्वा कुब्जिका च कुब्जिका घोर - पूर्विका। पञ्च-दशी षोडशी च गायत्री ब्रह्म-रूपिणी।
श्रीमहा - षोडशी पूर्ण - शाम्भवं च षडन्वयम्। सर्वाधिकार-रूपं च गायत्री च चतुष्पदा।
पाशुपत - त्रयं चैव महा - पूर्णाभिषेचनम्। महा-षोढा-द्वयं न्यासं ततः सप्त - दशाक्षरी ॥
साम्राज्य-दीक्षा मेधा च केवला मुक्ति-दायिनी। वानप्रस्थाश्रमे पश्चात् महा-मेधाऽभिधीयते ॥
महा - साम्राज्य - दीक्षाया लोके पर-तरं नहि। न न्यास - पूजनं तत्र नियमं नापि विद्यते ॥
केवलं धारणान्मुक्तिर्मन्त्रोच्चाराच्छिवो भवेत्। एवं सङ्केत - मात्रं तु कथितं ते मयाऽधुना।
गुरु - वक्त्राम्बुजादेव तत्सर्वं ज्ञायते बुधैः। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गोपनीयं त्वया शिवे! ॥

इस क्रम में आद्या का त्र्यक्षरी या दशाक्षरी अथवा षोडशाक्षरी, श्यामा का त्र्यक्षरी या नवाक्षरी, दक्षिणा-कालिका का द्वा-विंशाक्षरी, एक-जटा का त्र्यक्षरी, नील - सरस्वती का सार्ध - चतुरक्षरी, महोग्र-तारा का सार्ध-पञ्चाक्षरी, शारदा का एकाक्षरी, बाला का त्र्यक्षरी और षडक्षरी (ये सब 'हादि - विद्या' के भाग हैं), सिद्धि-लक्ष्मी का नवाक्षरी, सिद्धि-कराली अर्थात् रामोपासिता दश-वक्त्रा गुह्य-काली का सप्त-दशाक्षरी, सिद्धि-कपालिनी अर्थात् हिरण्यकशिपूपासिता शत-वक्त्रा गुह्य-काली का षोडशाक्षरी। इस विद्या के विषय में यद्यपि महा-काल-संहिता में इस प्रकार से लिखा है--

इयं हिरण्यकशिपूपासिता षोडशाक्षरी । पूर्वमत्युद्धृता चैव साम्प्रतं च समुद्धृता ।।
महा-प्रलय-कर्तृत्वान्नोपास्येयं नृणां प्रिये ! शत-शीर्षायुत-करा दुर्निरीक्ष्य नराकृतिः ।।

तथापि पूर्वोक्त 'हादि - विद्या' का भाग लेने से, देवत्व को प्राप्त होता है । **'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'** इत्यादि प्रमाण से अपने को देव समझ कर, इस विद्या को भी कोई लोग ले लेते हैं । मतान्तर में इस विद्या को न लेकर, **सिद्धि - लक्ष्मी** से पहले **तुम्बरेशी** का त्र्यक्षरी या पञ्चाक्षरी लेने की भी प्रथा है । **काम - कला गुह्य - काली** का अष्टादशाक्षरी, **उन्मनी** का त्र्यक्षरी, **अन्नपूर्णा** का विंशाक्षरी, या **पूर्णेशी** का षडक्षरी, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी, या भुवनेश्वरी का त्र्यक्षरी, त्रि-वक्त्रा षड्-भुजा भुवनेश्वरी का महा - पञ्चाक्षरी, **महा - काली** का चतुरक्षरी, महा - लक्ष्मी का चतुरक्षरी, **महा - सरस्वती** का चतुरक्षरी, **चामुण्डा** का नवार्ण मन्त्र (सप्तशती - वर्णित), कुब्जिका - **समया** का द्वा - त्रिंशाक्षरी, **घोर-कुब्जिका** का द्वा - त्रिंशाक्षरी अथवा **कर्म - कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वीर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी (ये सब कादि-ग्रन्थ के हैं)। तदनन्तर **श्रीविद्या** पञ्च-दशाक्षरी, श्रीविद्या षोडशाक्षरी, त्रिकूटा-सहित त्रि-पदा **ब्रह्म-गायत्री**, श्रीविद्या महा-षोडशी, रश्मि-सहित षडन्वय शाम्भव-दीक्षा, 'आज्ञा-चक्र' में द्वा-त्रिंशद् रश्मि, स्वाधिष्ठान में एक-त्रिंशद् रश्मि, मणिपूर में षड्-विंशद्-रश्मि और मूलाधार में अष्टाविंशद्-रश्मि होती हैं। पहले स्वाधिष्ठान, उसके बाद मणिपूर, तब मूलाधार-चक्र के क्रम से 'षडन्वय' में चिन्मन होता है। यह सब विषय **गुरु-वक्त्र-गम्य** है । इसमें शङ्कराचार्य जी का निम्नलिखित वचन प्रमाण है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं, स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रू-मध्ये सकलमपि भित्वा कुल-पथं, सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।।

पूर्वोक्त रश्मि-सहित 'शाम्भव-दीक्षा' के अनन्तर, षडाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा', 'सम्यगाप्ता-क्रम' से ब्रह्म - गायत्री और चतुष्पदी गायत्री । लिखा भी है—**'गायत्री चेत् सम्यगाप्ता - क्रमेण'**, परन्तु यह 'सम्यगाप्ता - क्रम' गुरु-मुखारविन्द द्वारा ही अवगत हो सकता है । अलेखिनी विद्या होने से किसी ग्रन्थ में लिखित नहीं मिलती । गुरु-परम्परागत चली आती है । उसके बाद लघु-पाशुपत, मध्यम-पाशुपत, महा-पाशुपत, महा-पूर्णाभिषेक, महा-षोढान्यास, श्रीविद्या सप्त-दशी, साम्राज्य-मेधा-दीक्षा । इससे अधिक में गृहस्थों का अधिकार नहीं है । गृहस्थाश्रम के बाद महा-साम्राज्य-दीक्षा होती है ।

'वृहद् बड़वानल-तन्त्र में लघु-क्रम के विषय में निम्न-लिखित वचन मिलते हैं—

तत्त्वं पर-तरं दिव्यमशक्तानां कलौ युगे । षडाम्नाय - प्रबोधाय कथयामि लघु - क्रमम् ।।
यदि दैव-वशात् कश्चित् पूर्ण-क्रमं न लभ्यते । तदा महा - क्रमं कुर्यात् पर-ब्रह्म-पदाप्तये ।।
कलौ दैव-वशाद् देवि ! सुगुरुश्चेन्न लभ्यते । तदा सूक्ष्म - प्रकाराख्यं लघु-क्रममथाचरेत् ।।
लघु-क्रमे गुह्य-काली भुवना कुब्जिका तथा । दक्षिणा कालिका तारा श्रीविद्या परमेश्वरी ।।
चामुण्डाया नवार्णं च सर्व-दीक्षा-प्रदीपनम् । एकैक-मन्त्र-संयुक्तः कुर्यात् कौलाभिषेचनम् ।।
स्व-गुरु-क्रम-मार्गेण शाम्भवं च समाश्रयेत् ।।

१२—लघु-क्रम

इस लघु-क्रम में भरतोपासिता **दशानना गुह्य-काली** का षोडशाक्षरी, **सिद्धि-लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी, **कुब्जिका समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्ध-पञ्चाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी, **श्रीविद्या** पञ्च-दशाक्षरी और श्रीविद्या षोडशाक्षरी—इन सब विद्याओं को सान्दीपिनी समझ

कर **नवार्ण-मन्त्र** लिया जाता है। तब गुरु-परम्परा से शाम्भव होता है। मतान्तर से पूर्वोक्त लघु-क्रम में **दक्षिण-काली** का एकाक्षरी काली-बीज, **तारा** का एकाक्षरी शव-बीज, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी माया-बीज और **कुब्जिका** का एकाक्षरी खेचरी - बीज लेकर **बाला** के षडक्षरों में षडाम्नाय समष्टि करके, 'कौलाभिषेक' लिया जाता है। विद्या और आम्नाय - क्रम से, आद्य- विद्या में 'शाक्ताभिषेक', द्वितीय - विद्या में 'कौलाभिषेक' और तृतीय-विद्या में 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं।

नव-क्रम से प्रथम आम्नाय में 'शाक्ताभिषेक', द्वितीय आम्नाय में 'कौलाभिषेक', तृतीय आम्नाय में 'पूर्णाभिषेक' होता है। महा-क्रम और पूर्ण-क्रम में प्रथम हादि-अङ्ग में 'शाक्ताभिषेक', कादि-अङ्ग में 'कौलाभिषेक' होता है। इन सब अङ्गों के पूर्ण होने के अनन्तर 'पूर्णाभिषेक' होता है।

सम्भव है 'क्रम - दीक्षा' के उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार हों, किन्तु उनसे हम परिचित नहीं हैं। यदि हों और कोई साधक-प्रवर उनसे परिचित हों, तो कृपया 'चण्डी' में लिखने की चेष्टा करें, जिससे पाठकों को लाभ हो। 'तन्त्र-चिन्तामणि' में भी 'क्रम-दीक्षा' के बारे में लिखा है, किन्तु इस लेख में प्रदर्शित क्रमों से उसमें विशेषता नहीं है। अतएव 'तन्त्र-चिन्तामणि' में प्रदर्शित 'क्रम - दीक्षा' का विषय इस लेख में नहीं दर्शाया गया।

'पादुका-दीक्षा' और क्रम-मन्त्र-ग्रहण के समय विघ्न

'पादुका-दीक्षा' के विषय में हमें इतना निवेदन करना है कि, प्रत्येक आम्नाय की पृथक्-पृथक् बीज-युक्त गुरु-पादुका होने से जिस-जिस आम्नाय का पूर्ण-क्रम होता है, उसी आम्याय की 'पादुका-दीक्षा' होती है। 'नाम-करण' तो 'पूर्णाभिषेक' के अनन्तर ही होता है।

ऊपर निर्दिष्ट क्रमों में सबसे बड़ा 'पूर्ण-क्रम' है। योग्य सद्-गुरु की प्राप्ति होने पर, गुरु और शिष्य दोनों यदि दत्त-चित्त होकर अभ्यास करना प्रारम्भ करें, तो ३-४ वर्षों में क्रम समाप्त कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक आम्नाय की मूल-विद्या मात्र का, एक लक्ष जप का 'पुरश्चरण' होता है। प्रति-वर्ष गुरु-पर्वादि पर्व मिलने के कारण क्रम-मन्त्र-ग्रहण के लिए अनुकूल अवसर मिल सकता है।

'नारद-पञ्चरात्र' में 'क्रम - मन्त्र-ग्रहण' के समय विघ्नों के सम्बन्ध में बताया है। इन विघ्नों से साधक को घबराना नहीं चाहिए। योग्य गुरु की समक्षता में विघ्नों की आशङ्का ही नहीं रहती। सद्-गुरु साक्षात्-त्रिपुरा - स्वरूप हैं। जगदम्बिका के समक्ष विघ्नों का स्वप्न भी नहीं आ सकता, अपितु भाविनी फल-सिद्धि के सूचक शुभ-स्वप्न ही दिखाई देंगे। अतः सद्-गुरु-सान्निध्य की अवश्यमेव आवश्यकता है। गुरु-देव और जगदम्बा में कोई भेद नहीं है।

'दीक्षा', 'क्रम-दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक'—स्त्रियों के लिए भी ग्राह्य

'दीक्षा' जिस प्रकार पुरुषों के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है। अतएव 'क्रम-दीक्षा' का अधिकार स्त्रियों को भी, पुरुषों के समान है। 'क्रम-दीक्षा' के अनन्तर ही 'पूर्णाभिषेक' होता है। '**दम्पतीभ्यां मनुं दत्वा, कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम्**' इत्यादि आगम-वचन के अनुसार 'क्रम-दीक्षा' के बिना 'पूर्णाभिषेक' नहीं हो सकता। जब दम्पतियों को 'पूर्णाभिषेक' का अधिकार है, तो 'क्रम-दीक्षा' का अधिकार सुतरां सिद्ध है। यदि स्त्रियों के लिए 'दीक्षा', 'क्रम - दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक' का विधान न होता, तो—

स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता, मातुश्चाष्ट-गुणाधिका। स्वप्न-लब्धा च या विद्या, तत्र नास्ति विचारणा॥

इत्यादि 'गौतमीय तन्त्र' के वचनानुसार उनको किस प्रकार दीक्षाऽधिकार दिया जाता ? 'स्वयमसिद्धा कथं परान् साधयिष्यति'—इस नियम के अनुसार अदीक्षित किस प्रकार दूसरों को दीक्षित कर सकता है ? अतः निश्चित है कि 'दीक्षा', 'क्रम-दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक'—स्त्रियों के लिए भी पुरुषों के समान अवश्य ग्राह्य हैं।

कुछ लोगों का मत है कि 'स्वाहा' और 'प्रणव' (ॐ) युक्त मन्त्र स्त्री और शूद्रों के लिए निषिद्ध हैं, किन्तु यह निषेध 'पाशव-कल्प-विषयक' है, 'वीर-कल्प' और 'दिव्य-कल्प-विषयक' नहीं। इस विषय में 'तन्त्र-चिन्तामणि' में लिखा है, यथा—

प्रणवोच्चारणाद्धोमात्, शालग्राम-शिलार्चनात्। ब्राह्मणी-गमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥
शूद्रस्य प्रणवोच्चारं, पुराणेऽसम्मतं प्रिये ! तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं, तन्त्रोक्तं शूद्र-जातिना॥
महा- विद्या-प्रभावेण, शूद्रो वैश्यत्वमाप्नुयात्। प्रणवाद्या महेशानि ! गृह्णीयुः शूद्र-जातयः॥

'शूद्र' शब्द से यहाँ स्त्रियों का भी ग्रहण है। अतः 'प्रणव' का उच्चारण दोनों के लिए निषिद्ध है। 'पुराण-सम्मतं' जो लिखा है, वह 'पाशव-कल्प-विषयक' है। तथा 'तन्त्रोक्त' जो लिखा है, वह 'वीर' और 'दिव्य-कल्प-विषयक' है।

'क्रम-दीक्षा' - सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान

ध्यान, मन्त्र और पूजा-सहित क्रम-दीक्षा-विषयक विवरण एवं भैरवी और कमला-क्रम भी, जैसा प्राप्त था, प्रकाशित हो चुका है। सम्भव है कि इनके क्रम के प्रकारान्तर भी हों और अभी तक अज्ञात हों, किन्तु जो क्रम बताया गया है, वह गौड़-सम्प्रदायान्तर्गत है। इस सम्प्रदाय के कई साधकों ने इस प्रकाशित क्रम को पढ़ा है और इसकी पुष्टि की है।

बगलामुखी महा-विद्या के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

उक्त विवरण में आया है कि 'बगलामुखी महा-विद्या होने पर भी किसी आम्नाय की नायिका नहीं है और वह विद्या केवल दक्षिणाम्नायान्तर्गत ही है।' यह ठीक ही है। महा-विद्या होने पर भी वह सिद्ध-विद्या है अथवा उप-विद्या है, यह नहीं लिखा।

विद्याएँ कई प्रकार की हैं, यह तो सबको मालूम ही है, जैसे महा-विद्या, सिद्ध-विद्या और उप-विद्या इत्यादि। इन विद्याओं में जिस विद्या का प्रकरण चलता है, 'विद्या'-पद लिखने से उसी 'विद्या' को समझना चाहिए। जैसे 'महा-विद्या'-विषयक बात में 'विद्या' लिखने से महा-विद्या का और 'सिद्ध-विद्या' के विषय में 'विद्या' शब्द से सिद्ध-विद्या का ही बोध होता है। यदि भगवान् श्रीकृष्ण की व्याख्या चल रही हो, तो 'भगवान्'-शब्द से उसमें पुनः श्रीकृष्ण का ही अर्थ होगा। यदि 'भगवान्' का अर्थ वहाँ पर शङ्कर भगवान् किया जाएगा, तो अर्थ में अनर्थ हो जाएगा। बार-बार भगवान् श्रीकृष्ण लिखने से लेख का विकार न बढ़ जाए, अतः 'भगवान्'-शब्द ही प्रयुक्त होता है।

आम्नाय के विषय में एक ही विद्या मन्त्र, यन्त्र और ध्यानादि के भेद से पृथक्-पृथक् आम्नाय की मानी जाती है। जैसे गुह्य-काली विद्या सकल आम्नायों में है, किन्तु यदि कोई यह प्रश्न करे कि 'गुह्य-काली किस आम्नाय की है ?' तो इसका उत्तर यह होगा कि वह "उत्तराम्नाय की है।" इसका

कारण यह है कि गुह्य-काली की सकल विद्याओं में भरतोपासिता दश-वक्त्रा गुह्य-काली मुख्य मानी गई है और वह उत्तराम्नायात्मिका है । महा-काल संहिता (गुह्य-काली-खण्ड), भाग १, पृष्ठ २ में लिखा है—

दश-वक्त्रा षोडशार्णा, चतुष्पञ्चशबीर्युता । सर्वासां गुह्य-कालीनां, सा वै मुख्य-तमा स्मृता ॥

एवमेव तारा-विद्या अधराम्नाय-नायिका है । इसका सार्ध-पञ्चाक्षरी मन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक होने के कारण उसकी उपासना अधराम्नाय आर्य-तारा के भेद से होती है । बौद्ध-मार्गानुयायी यही उपासना करते हैं और सम्वरौधि-मत से पूर्णाभिषेक भी लेते हैं ।

इसी प्रकार छिन्नमस्ता में भी दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय और अधराम्नाय से उपासना की जाती है । 'पुरश्चर्यार्णव' में तो केवल दक्षिण और उत्तर को बताया है, परन्तु 'विश्वसार-तन्त्र' में वज्र-वैरोचनी नाम से अधराम्नाय में उसका वर्णन किया है । इस महा-विद्या के नाम, ध्यान और मन्त्र-भेद बहुत हैं, जैसे—प्रचण्ड-चण्डिका, वज्र-वैरोचनी और रेणुका, शबरी इत्यादि । रेणुका शबरी मतान्तर में सिद्ध-विद्या भी मानी गई है ।

सिद्ध-विद्या और महा-विद्या में वागर्थ-वत् कोई भेद नहीं है । किसी क्रम में सिद्ध - विद्या महा-विद्या में समष्टि होकर उसका अङ्ग बन जाती है और किसी क्रम में महा-विद्या समष्टि होकर उसका अङ्ग बन जाती है ।

अतएव बगला महा-विद्या का मुख्य मन्त्र, ध्यानादि दक्षिणाम्नायात्मक होने के कारण उसे दक्षिणाम्नायात्मिका बताया गया है । यह महा-विद्या ऊर्ध्वाम्नाय में भी है । उसमें स्थिरा-माया के स्थान पर भुवना-माया का प्रयोग है । इस महा-विद्या के भेद आम्नायान्तरों में भी हो सकते हैं ।

ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र बगलामुखी के 'ब्रह्मास्त्र-कवच' में दिया ही है । श्रीविद्या के श्रीयन्त्र की आवरण-पूजा में इसी मन्त्र से पूजा होती है, न कि स्थिरा-माया-युक्त मन्त्र से ।

बगलामुखी का दक्षिणाम्नायात्मक मन्त्र तो स्वयं ही दक्षिणाम्नायात्मक है । ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र में भी भुवना-माया का ऊर्ध्वाम्नायात्मक बीज दो स्थानों में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु दक्षिणाम्नायात्मकाक्षर लकार का प्रयोग काम-बीज में किया गया है । अब देखिए, ऊर्ध्वाम्नाय में दो माया-बीजों के भाग हैं—ह+र+ई+नाद+विन्दु–ये पाँच भाग द्विगुण करने से १० हुए । तथा दक्षिणाम्नायात्मक बीज (यहाँ दक्षिणाम्नायात्मक रूप से विद्यमान है) के भाग हैं—क+ल+ई+नाद+विन्दु–ये ५ और 'स्वाहा' भी यहाँ दक्षिणाम्नायात्मक रूप है, उसके स+व+आ+ह+आ–ये ५ भाग होने से १० ही हुए । यहाँ ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र में भी दक्षिणाम्नाय का भाग ऊर्ध्वाम्नाय के समान होने से भी इस महा-विद्या के दक्षिणाम्नायान्तर्गत होने का प्रमाण मिलता है । 'पुरश्चर्यार्णव' में देखिए—

निशेशी दक्षिणा काली, बगला छिन्नमस्तका । भद्रा तारा च मातङ्गी, दक्षिणाम्नाय-देवताः ॥

पुनः 'स्थिरा-माया' को बगला-बीज भी कहते हैं, 'स्थिरा-माया' दक्षिणाम्नायात्मक बीज है । 'शक्ति-सङ्गम' आदि किसी तन्त्र में भी बगलामुखी महा-विद्या दक्षिणाम्नायात्मिका नहीं है, अपितु अमुक-आम्नायात्मिका है, ऐसा नहीं बताया गया है । किन्तु 'पुरश्चर्यार्णव' की उक्ति और मन्त्रों के सङ्केत के मनन से तो यही विदित होता है कि इनके मन्त्रों में मुख्य मन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक ही हैं, अतः उपर्युक्त लेख में इस महा-विद्या को दक्षिणाम्नायान्तर्गत बतलाया है ।

'शुद्धि' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

शुद्धि' को 'महा-निर्वाण तन्त्र' में वायु - तत्त्वात्मक बताया है और 'बृहद् - बड़वाऽनल तन्त्र' ने उसे पार्थिव-तत्त्वात्मक घोषित किया है तथा ग्रन्थान्तर में उसे 'जल-तत्त्वात्मक' भी दर्शाया गया होगा। इससे साधकों को भ्रम हो सकता है, किन्तु ये तीनों बातें ठीक हैं। लिखा है कि–

"मांसं च त्रिविधं प्रोक्तं, जल-भू-चर-खेचरम्।"

अर्थात् 'जल-चर' कूर्मादि का मांस जल-तत्त्वात्मक है, 'भू-चर' जन्तुओं का मांस पार्थिव-तत्त्वात्मक है और 'खे-चर' पक्षी आदि का मांस वायु-तत्त्वात्मक है।

'भू-चर'—मांस का शोधक गायत्री मन्त्र है—**'पृथ्वी - तत्त्वाय विद्महे भूचराय धीमहि तन्नो मांसं प्रचोदयात्।'**

'खेचरामिष' शोधन-मन्त्र है–**'वायु-तत्त्वाय विद्महे खेचराय धीमहि तन्नो पक्षी प्रचोदयात्।'**

महा-यागादि में जब तक चरु स्थापित होते हैं, उस काल में शङ्ख-पात्र में 'जल - चर चरु' में मीन के साथ कूर्मामिष भी स्थापित होता है, किन्तु 'जल-चर - शुद्धि' का शोधन-मन्त्र पृथक् नहीं है। मीन के साथ रहने के कारण मत्स्य-शोधन के मन्त्र से ही काम लिया जाता है। अतः 'जल-चर-मांस' जल-तत्त्वात्मक सिद्ध हुआ।

'पूर्णाभिषेक' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

पूर्णाभिषेक के विषय में 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है कि—**'पूर्णाभिषेको देवेशि ! दश-विद्या-विधौ स्मृतः।'** यहाँ भी 'महा-विद्या' न लिखकर केवल 'विद्या' लिखा, तथापि हम तो 'विद्या' का अर्थ 'महा-विद्या' ही समझते हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' में यह भी लिखा है—

वैष्णवो गाणपत्यश्च, सौरश्चैव कुलेश्वरि ! अभिषेकं प्रकुर्वीत, शाक्तश्च कुल-भूषणः॥

इस उक्ति से पूर्वोक्त बात बिलकुल कट गई। पुनश्च कुब्जिका आदि सिद्ध-विद्याओं में भी पूर्णाभिषेक का प्रमाण और विधियाँ ग्रन्थालयों में प्रशस्त रूप से ही हैं। यद्यपि 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है कि–**'क्रम-दीक्षा-विधिर्यत्र, तत्र पूर्णाभिषेचनम्।'**

तथापि मतान्तर में क्रम के बिना भी पूर्णाभिषेक और नामकरण देखा जाता है, इस मत-वाले बिना प्रमाण के ऐसा नहीं कर सकते थे। इस विषय में भी 'पुरश्चर्यार्णव' का पूर्वोक्त वचन पर्याप्त है, परन्तु मत-मतान्तर से **'पूर्णाभिषेको देवेशि ! दश-विद्या-विधौ स्मृतः'**—यह प्रमाण तथा **'वैष्णवो गाणपत्यश्च, सौरश्चैव कुलेश्वरि ! अभिषेकं प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुल-भूषणः'**—ये दोनों भी ठीक हैं।

किसी मत में केवल दश महा-विद्याओं में ही अभिषेक होता है, तो किसी के मत में सकल दर्शनों का समस्त देव-देवियों में अभिषेक होता है। केवल अपनी-अपनी गुरु-परम्परा-भेद की बात है।

वास्तव में अभिषेक का तात्पर्य यह है कि जिस विषय में पूर्णाभिषेक, कौलाभिषेक, शाक्ताभिषेक, राज्याभिषेक और मठाभिषेक आदि अभिषेकों में से कोई एक भी अभिषेक किसी साधक का हो गया हो, तो वह उस विषय का साङ्गोपाङ्ग सर्वाधिकारी हो जाएगा। वैसे ही क्रम - युक्त हो अथवा क्रम-रहित हो, पूर्णाभिषिक्त होने पर वह उस मन्त्र का सर्वाधिकारी हो जाएगा। क्रम किया हो, तो जिन-जिन मन्त्रों का क्रम उपलब्ध हुआ है, उन-उन मन्त्रों का और तदङ्ग-भूत उप-मन्त्रों का वह सर्वाधिकारी होगा। यदि एक ही मन्त्र में हुआ, तो केवल उस मन्त्र के अङ्ग-भूत उप-मन्त्रों का ही वह अधिकारी होगा।

उदाहरण के लिए देखिए—गोरक्षनाथ के मत में केवल 'बाला' के 'एकाक्षरी मन्त्र' से क्रम के बिना ही 'नाम-करण' और 'पूर्णाभिषेक' होता है और इसी विद्या के प्रभाव से वे लोग मठाधीश बन जाते हैं। ये लोग मन्त्र में पूजन 'म-पञ्चक' से ही करते हैं और कौलों के ही अनुसार 'चक्रार्चन' भी करते हैं। विधि-विधान भी प्रायः कौल लोगों से ही मिलता - जुलता है। अतएव "बिना क्रम के पूर्णाभिषेक हो ही नहीं सकता"—यह नहीं कहा जा सकता।

'ब्रह्म-गायत्री' की विपरीत मूर्ति बगलामुखी, 'कुण्डलिनी-रूपा' छिन्नमस्ता आम्नाय-नायिकाओं की अङ्ग बनकर क्रमात्मिका हुई—इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

'क्रम-दीक्षा' के विषय में आम्नाय-नायिका होने से उपर्युक्त लेख में दृढ़ता के साथ कहा गया कि— "इस विद्या में क्रम है।" भ० बगला के विषय में विशेष अभिज्ञता न होने के कारण "क्रम है" अथवा "क्रम नहीं है"—यह बात दृढ़ता के साथ नहीं लिखी जा सकी।

वास्तव में बात यह है कि सर्वाधिकार 'निर्वाण दीक्षा' केवल षडाम्नाय - नायिकाओं की ही होती है। यह 'निर्वाण - दीक्षा', उस कुल्लुका की सेतु, महा - सेतु और निर्वाण नहीं है, जो केवल दश-महा-विद्याओं में ही होती है और सिद्ध-विद्यादि में नहीं होती। इसके बदले वहाँ और ही है, परन्तु यह 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा', केवल षड् - विधा ही है। अन्य नहीं, यथा—१ दक्षिणाम्नाय में 'निर्वाण दक्षिण-काली', २ अधराम्नाय में 'निर्वाण तारिणी', ३ पूर्वाम्नाय में 'निर्वाण भुवनेश्वरी', ४ उत्तराम्नाय में 'निर्वाण गुह्य-काली', ५ पश्चिमाम्नाय में 'निर्वाण कुब्जिका' और ६ ऊर्ध्वाम्नाय में 'निर्वाण-सुन्दरी'। इन षड्-विद्याओं में अपने-अपने आम्नाय-भेद से अपने - अपने आम्नायात्मक सर्वाधिकार 'कूटाक्षर वीज' विद्यमान होते हैं।

जब तक सर्वाधिकार 'निर्वाण-दीक्षा' प्राप्त नहीं होती, तब तक साधक 'क्रम' में पूर्ण नहीं हो सकता। यद्यपि इसमें प्रमाण बहुत हैं, तथापि यहाँ उन ग्रन्थों का प्रमाण दिया जा रहा है, जो वीर लोगों के पास हैं। 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र', काली-खण्ड, षष्ठ पटल में लिखा है—

श्रीविद्योपासकानाञ्च पारम्पर्य-क्रमं शृणु। आदौ बाला विनिर्दिष्टा ततः पञ्च-दशी मता॥
तथा श्रीषोडशी-विद्या परा-विद्या तदुत्तरम्। ततश्चरण-दीक्षा स्यात्ततो निर्वाण-दीक्षणम्॥
ततः षट्-शाम्भवाख्या च मेधा-दीक्षा तदुत्तरम्। अनुक्रमेण संयुक्ता मेधा-दीक्षाऽभिधा भवेत्॥

यह ऊर्ध्वाम्नाय के विषय में है। इसी प्रकार आम्नायान्तर-नायिकाओं के भी अन्य ग्रन्थान्तरों में प्रमाण पाए जाते हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' और 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' के सर्वत्र विद्यमान होने से यहाँ केवल इन दो ग्रन्थों से ही प्रमाण दिए गए हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है—"**सुन्दरी तारिणी काली, क्रम-दीक्षाऽभिगामिनी।**"

पुनः इसी ग्रन्थ में लिखा है—"**सर्वाधिकारो देवेशि! एतद्दीक्षा-विधौ स्मृतः।**" अतएव आम्नाय-नायिका न होनेवाली महा-विद्याओं और सिद्ध-विद्याओं में क्रम होने का संशय होता है। यहाँ यह सम्भावना दिखाई देती है कि 'बगला' और 'छिन्ना' आम्नाय-नायिकाओं की अङ्ग बनकर क्रमात्मिका हुई होंगी। प्रमाण के लिए देखिए—'श्रीविद्या' ऊर्ध्वाम्नाय-नायिका और 'तारा' अधराम्नाय - नायिका हैं। 'शक्ति - सङ्गम - तन्त्र', काली - खण्ड, षष्ठ पटल में लिखा है—"**श्रीविद्याङ्गा तु बगला, ताराङ्गा छिन्न-मस्तका।**"

'बगला' के क्रम के अन्त में 'गायत्री' में समष्टि दर्शाई जाती है और 'श्रीविद्या' के पूर्ण-क्रम में भी 'गायत्री' का 'सम्यगाप्त - क्रम' होकर 'साम्राज्य - मेधा - दीक्षा' रूप 'निर्वाण - महा - त्रिपुर-सुन्दरी' में समष्टि होती है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि बगलामुखी' 'श्रीविद्याङ्ग' बनकर क्रमात्मिका बनी हैं।

अतएव उपर्युक्त विवरण में 'बगला' और 'छिन्नमस्ता' आदि महा-विद्याओं की अवहेलना नहीं हुई है। महा-विद्याओं की अवहेलना तो एक ओर रही, सामान्य विद्या की भी अवहेलना करना महा-पाप है--**"विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः।"**

'बगला महा-विद्या' तो 'ब्रह्म-गायत्री' की विपरीत मूर्ति है और 'महा - मृत्युञ्जय' की शक्ति है। जिस महा-विद्या द्वारा मनुष्यों का वर्णाश्रम-विभाग होता है और जो स्वयं जीव मात्र के स्वास्थ्य का मुख्य कारण है और जो मुक्ति प्रदान कर सकती है, ऐसी 'भुक्ति-मुक्ति - प्रदा' महा-विद्या की अवहेलना कैसे हो सकती है ? और 'छिन्न-मस्ता' महा-विद्या, जो कि समस्त प्राणियों में साक्षात् 'कुण्डलिनी - रूप' बनकर, अशेष जीवों को चैतन्य प्रदान कर रही है और अपने कण्ठ से निर्गत तीन रुधिर - धाराओं से--१ ईडा, २ पिङ्गला और सुषुम्णा नामक नाड़ियों का निर्माण कर, जीवों को उच्छ्वास - निःश्वास करने की सामर्थ्य दे रही है---ऐसी सकल जीव-लोक-चैतन्य-रूपिणी माता की अवहेलना - पथ का पथिक कौन बन सकता है ?

लघु पूर्णाभिषेक और महा पूर्णाभिषेक

'अभिषेक' के विषय में-- 'पूर्णाभिषेक' दो प्रकार का है : एक 'लघु - पूर्णाभिषेक' और दूसरा 'महा-पूर्णाभिषेक।' इस विषय में शास्त्र-वचन प्रमाण-सहित 'क्रम-दीक्षा' लेख में दिए जा चुके हैं। 'लघु-पूर्णाभिषेक' को ही बहुत से ग्रन्थों में केवल "पूर्णाभिषेक" लिखा है। 'महा-पूर्णाभिषेक' तो 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा' के बिना नहीं हो सकता। इसका पूरा विवरण 'वृहद्-बड़वानल-तन्त्र' के 'दीक्षा - प्रकरण' में दिया हुआ है, जिसे ऊपर प्रकाशित किया गया है। ग्रन्थान्तर में भी इस विषय में लिखा होगा।

शाक्तों में प्रायः 'लघु-पूर्णाभिषेक' की ही प्रथा प्रचलित है। 'महा - पूर्णाभिषेक' देने और लेने के लिए समर्थ-वान् पुरुष असम्भव नहीं, तो दुर्लभ अवश्यमेव हैं। 'महा-पूर्णाभिषेक' देनेवाले गुरु को 'सुधा-पूर्ण' कलश में ७ अथवा ६ दिन तक मनुष्य को जीवित रखने की सामर्थ्य होनी चाहिए और उसी जीवित मनुष्य के चैतन्य को इष्ट मानकर पूजन करने की शक्ति भी होनी चाहिए। 'महा - पूर्णाभिषेक' लेनेवाले शिष्य के लिए भी षडन्वय-शाम्भव के चिन्तन का अभ्यास और निर्वाण-दीक्षा के जप के प्रभाव से रन्ध्र खोलकर, वाष्प निकालने की क्षमता अत्यन्त आवश्यक है। जब गुरु और शिष्य---दोनों उक्त प्रकार के हों, तब 'महा-पूर्णाभिषेक' हो सकता है। इसका प्रमाण 'पुरश्चर्यार्णव' नामक ग्रन्थ से ही दिया जाता है---

सजीव-मीन- युक्तेन सुरया पूरितेन च। पञ्चामृतैस्तु सम्पूर्ण-शङ्खेन कलशेन वा ।।
अभिषेकं ततः कुर्यात् कुल-वृक्षोत्थ-पल्लवैः। अयं पूर्णाभिषेकोऽत्र कुल-मार्गे प्रकीर्तितः ।।

यह 'महा-पूर्णाभिषेक' केवल 'कुल-कल्प' से ही हो सकेगा, 'पाशव-कल्प' में नहीं। 'लघु-पूर्णाभिषेक' तो 'पाशव-कल्प' से भी हो सकता है। इस विषय में प्रमाण के लिए, 'पुरश्चर्यार्णव' के पूर्वोक्त वचन ही पर्याप्त हैं।

मन्त्र-ध्यान आदि के आम्नाय-सङ्केत

मन्त्र-ध्यानादि के यथार्थ सङ्केत गुरु-वक्त्र-गम्य हैं, लेख्य नहीं। तथापि यहाँ बगला बीज के विषय में एक छोटी-सी क्रिया का सङ्केत किया जाता है **सबसे पहले 'मन्त्र' किस 'देवता' का है यह जान लेना चाहिए। तदनन्तर उसका अर्थ विचारना चाहिए। 'मन्त्र' का भावार्थ विदित होने पर, उस 'मन्त्र' के प्रत्येक 'वीज' और 'पद' का अर्थ विचार करके – सृष्ट्यात्मक अर्थवाले पद और वीजों को 'पूर्वाम्नायात्मक', स्थित्यात्मक अर्थवाले पद और वीजों को 'दक्षिणाम्नायात्मक', संहारात्मक अर्थवालों को 'पश्चिमाम्नायात्मक', अनाख्यात्मक (अन्तर्लयात्मक) और भाषात्मक (अनुग्रहात्मक) अर्थवालों को अनुकल्प से 'उत्तराम्नायात्मक' तथा 'ऊर्ध्वाम्नायात्मक' मानना होगा।**

अर्थात् जिस मन्त्र में भाषात्मक उत्तराम्नायात्मक अर्थ होगा, उसमें ऊर्ध्वाम्नाय अनाख्यात्मक होगा और जहाँ भाषात्मक ऊर्ध्वाम्नायात्मक अर्थ होगा, वहाँ उत्तराम्नायात्मक अनाख्या होगा। जिस मन्त्र में 'वायु-तत्त्व' अथवा 'जल-तत्त्व' अधिक होगा, उस मन्त्र में उत्तराम्नाय भाषात्मक और ऊर्ध्वाम्नाय अनाख्यात्मक होगा। पुनः जिस मन्त्र में तेजस्तत्त्व, आकाश-तत्त्व अथवा पार्थिव-तत्त्व अधिक होगा, उस मन्त्र में उत्तराम्नाय अनाख्यात्मक और ऊर्ध्वाम्नाय भाषात्मक होगा। इस प्रकार से 'मन्त्राक्षरों' के **'आम्नाय-भाग'** जानने चाहिए।

प्रत्येक 'महा-मन्त्र' में कम-से-कम तीन आम्नायों के वीजों अथवा पदों का भाग होता है। 'मन्त्र' बहुत प्रकार के होते हैं— **नमोऽन्त, स्वाहान्त, फडन्त, विच्चेऽन्त, वषडन्त, वौषडन्त** और **वीजान्त** इत्यादि। सब मन्त्रों के अर्थ स्वाहान्त, नमोऽन्त और फडन्त मन्त्रों के अर्थ से मिलते-जुलते हैं। अतः उपर्युक्त तीन प्रकार के मन्त्रों का ही वर्णन किया जाता है। **'नमोऽन्त' मन्त्र पुं-रूप, 'स्वाहान्त' मन्त्र स्त्री-रूप और 'फडन्त' नपुंसक-रूप होते हैं।** यह केवल 'मन्त्र' के रूप का वर्णन है, देवता के रूप का नहीं। पुं-मन्त्र का तो देवता स्त्री - देवता भी हो सकता है। एवमेव स्त्री - रूप मन्त्र का पुं-रूप देवता और नपुंसक-रूप मन्त्रों के देवता भिन्न-रूपात्मक हो सकते हैं। कारण 'कुण्डलिनी' स्त्री-रूपा है और 'सहस्रार' का 'हंसग गुरु' पुं-रूप है, अतएव ऐसा हुआ।

विद्याएँ षडाम्नायों में बाँटी गई हैं। ये षडाम्नाय 'कहस'-रूप में अर्थात् 'कादि' (कुण्डलिनी-क्रम की) विद्या, 'हादि' (हंस-क्रम की) विद्या, 'सादि' (संवरौधि-क्रम की) विद्या में विभक्त किए गए हैं। इन तीन विद्याओं में से 'कादि-विद्या' 'काली', 'हादि-विद्या' 'सुन्दरी' और 'सादि-विद्या' 'तारा' है। जिन-जिन मन्त्रों का पुं-रूप सिद्ध होगा, वे मन्त्र 'हादि'-विद्याऽन्तर्गत होंगे। जिन मन्त्रों का स्त्री-रूप सिद्ध होगा, वे 'कादि'-विद्याऽन्तर्गत और नपुंसक-रूप मन्त्र 'सादि'-विद्याऽन्तर्गत होंगे।

अब 'बगला-वीज' को देखिए, इसमें 'ह्-कार' 'आकाश' का सूचक और 'ल-कार' पृथ्वी का अर्थ-सूचक है तथा 'ई-कार' ने शक्ति-रूप बनकर दोनों का ऐक्य किया। अतः इसका अर्थ 'स्वाहा' के समान हुआ। अतएव यह मन्त्र 'कादि-विद्या' के अन्तर्गत हो गया। 'स्वाहा' का अर्थ भी 'आकाश' और 'पृथ्वी' का एकीकरण करना है। 'ह' आदि में है तथा 'ल' अन्त में, इसीलिए 'ह' जाकर 'ल' में मिला। 'ल' 'पृथ्वी' का सूचक है, इससे यह स्पष्ट विदित हुआ कि यह 'स्थित्यात्मक वीज' है और स्थिति-आम्नाय 'दक्षिणाम्नाय' है। 'कुलार्णव-तन्त्र' के तृतीयोल्लासान्तर्गत ४१ वें श्लोक में लिखा है कि—

पूर्वाम्नायः सृष्टि-रूपः, स्थिति-रूपश्च दक्षिणः। संहारः पश्चिमो देवि ! उत्तरोऽनुग्रहो भवेत् ॥

अर्थात् दक्षिणाम्नाय स्थिति-रूप है। 'स्थिरा-माया' का अन्य नाम ही 'बगला-वीज' है। यह वात उपासक-प्रवरों से छिपी नहीं है, वरन् सर्व-विदित है। अतएव 'बगला' का मुख्य वीज यही (पूर्वोक्त) सिद्ध हुआ। 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है—

निशेशी दक्षिणा काली, बगला छिन्नमस्तका। भद्रा तारा च मातङ्गी, दक्षिणाम्नाय-देवताः ॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट विदित होता है कि 'बगलामुखी' दक्षिणाम्नायान्तर्गत महा-विद्याओं में से एक महा-विद्या हैं। दक्षिणाम्नाय-नायिका तो 'दक्षिणा-काली' ही हैं। एक आम्नाय की दो नायिका नहीं हो सकतीं। अतएव 'बगला-महा-विद्या' को उपर्युक्त लेख में दक्षिणाम्नायान्तर्गत महा-विद्या कहा गया। आम्नाय-नायिका के अतिरिक्त और विद्याओं की 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा' नहीं हो सकती, यह ऊपर विस्तार से वताया गया है।

'क्रम-दीक्षा' की पूर्व-भूमिका

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में सबसे प्रथम अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए। देव-भक्ति, श्रद्धा तथा मन की सरलता के बिना 'ईश्वरत्व' प्राप्त होना आकाश-कुसुम जैसा है। कुछ भी न करें, परन्तु सरल मन से 'भक्ति' तथा 'श्रद्धा' के साथ एक बार ईश्वर के नामोच्चारण से भी आदमी परम ज्ञानी बन सकता है। फिर अपने वर्णाश्रम तथा योग्यता के अनुसार सद्गुरु से जो 'उपदेश' मिलेगा, उसी में दृढ़ विश्वास, श्रद्धा तथा भक्ति रखकर सरल मन से उपासना करते-करते जब मानव बन पाएँगे, तब स्वयं ही 'गुरु-कृपा' प्राप्त कर—'क्रम' से ही शिव बन जाएँगे।

'कुलार्णव तन्त्र' आदि में लिखा है कि—

क्रम-दीक्षायुतो देवि ! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति।

अर्थात्—'क्रम-दीक्षावाला पुरुष क्रमशः शम्भु बन जाएगा।'

उदाहरण के लिए देखिए, वाल्मीकि जी पहले व्याध थे। उस अवस्था में उनको 'राम-नाम' तक भी वोलने का अधिकार न था। जब सप्तर्षियों के दर्शन से वाल्मीकि जी की चित्त-वृत्ति शुद्ध हो गई, तब उनको 'मरा' इस विपरीत 'राम-नाम' की 'दीक्षा' दी गई। तत्-पश्चात् क्रम-पूर्वक भक्ति, श्रद्धा तथा सरल चित्त से उपासना करते-करते, वे 'ब्रह्म-गायत्री' के मर्मज्ञ आदि-कवि महर्षि बन गए।

अतः धीरज रखकर 'श्रद्धा' तथा 'भक्ति' के साथ उपासना करना आवश्यक है। ईश्वर की आराधना में ब्राह्मण तथा चाण्डाल, कोई भी हो—मनुष्य मात्र का समान हक है।

किसी मनुष्य ने कुछ दुष्कर्म अथवा भूल की हो, तो वह भूल सुधार कर—स्वयं सहायक बनकर परोपकार करना चाहिए, जैसा कि सप्तर्षियों ने वाल्मीकि के साथ किया। साथ ही उस मनुष्य को भी अपनी भूल के प्रति पश्चात्ताप करते हुए दृढ़ विश्वास, श्रद्धा तथा भक्ति के साथ आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए, जैसा वाल्मीकि ने किया।

सकल मनुष्य मात्र को 'क्रम' से 'महा-पूर्णाभिषेक' तथा 'महा-साम्राज्य-मेधा' तक प्राप्त करने का समान अधिकार है, परन्तु क्रम-पूर्वक ही ऊपर की श्रेणी में चढ़ना होगा। इस हेतु आदि में तो वर्ण-भेद का विचार रखकर, अपने-अपने अधिकार के अनुसार 'दीक्षा'-ग्रहण कर उपासना का आरम्भ करना चाहिए। फिर गुरु-कृपा से क्रमशः क्रम-दीक्षा, पूर्णाभिषेक, महा-पूर्णाभिषेक आदि प्राप्त करने चाहिए।

सनातनी दीक्षा-क्रम

['दीक्षा-प्रकाश' लेख-माला के पिछले पृष्ठों में 'दीक्षा' का अर्थ, 'दीक्षा' के विविध भेद, 'दीक्षा' की आवश्यकता, 'दीक्षा'-रहस्य, 'दीक्षा' का लक्ष्य, 'दीक्षा' की विधि आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता, 'क्रम-दीक्षा' के भेद का वर्णन विधि-सहित हुआ है। अब यहाँ विद्वान् लेखक एवं परम्परा-प्राप्त साधक श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा का 'सनातनी दीक्षा का क्रम' निबन्ध प्रकाशित किया जा रहा है। इस विस्तृत निबन्ध द्वारा 'दीक्षा' के विविध क्रमों का विस्तार से परिचय प्राप्त हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं।---सं०]

मेरी गुरु-परम्परा 'वृहद्-वडवानल-तन्त्र' पर आधारित है। यह क्रम 'श्री उन्मत्त भैरव' का सिद्ध किया हुआ है। मेरा सम्प्रदाय 'गौड़' है। इसी मतानुसार मैं यह विस्तृत निबन्ध प्रस्तुत कर रहा हूँ। बहुत से लोग विविध क्रम के विभिन्न देवताओं के ध्यान आदि हिन्दी में चाहते हैं, अतः वैसा ही लिखा है—

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिन्दुओं की 'सनातनी दीक्षा' का प्रारम्भिक क्रम यह है कि सबसे पहले 'उपनयन-संस्कार' कराकर 'वैदिक गायत्री' को ग्रहण करे। ब्रह्मचारी बनकर गायत्री मन्त्र का चौबीस लाख जप करे। तब अपनी 'पितृ-परम्परा' के अनुसार 'दीक्षा' ग्रहण कर 'पाशव कल्प' से उपासना करे। जब साधक में पूर्ण विश्वास और भक्ति का समुचित विकास हो जाय, तब योग्य 'कौल गुरु' द्वारा यथा-रुचि और यथा-नियम अभीष्ट 'आम्नाय' का क्रम ग्रहण करे।

'दक्षिणाम्नाय' का क्रम शीघ्र ही अभीष्ट-सिद्धि-दायक है क्योंकि इस आम्नाय में 'भक्ति-योग' से उपासना होती है। केवल 'दक्षिणाम्नाय' के क्रम को ग्रहण करने से 'भुक्ति' और 'मुक्ति' दोनों हस्त-गत हो सकती हैं। अतः सर्व-प्रथम 'दक्षिणाम्नाय' के क्रम का ही वर्णन करता हूँ।

'दक्षिणाम्नाय' क्रम की 'काली' और 'तारा'-मन्त्र-विद्याएँ

'दक्षिणाम्नाय' में भी अन्य आम्नायों की भाँति तीन क्रम हैं—**१ कादि**, २ **हादि** और **३ सादि**। 'हादि-क्रम' में माया-वीजादि मन्त्र-विद्या—**'आद्या-काली'** हैं। 'कादि-क्रम' में 'काली-वीजादि' मन्त्र-विद्या—**'श्यामा-काली'** अथवा **'दक्षिणा-काली'** हैं। 'सादि-क्रम' में 'वधू-वीजादि' मन्त्र-विद्या—**'नीला-काली'** अथवा **'तारा'** हैं।

(१) हादि (हंस)-क्रम

'दक्षिणाम्नाय' के 'हादि-क्रम' में माया-वीजादि तीन मन्त्र-विद्याएँ हैं—(१) माया-लक्ष्मी-कुन्ती त्र्यक्षरी विद्या-काली—**'ह्रीं श्रीं क्रीं'**। (२) इसमें 'परमेश्वरि' तथा 'ठ-द्वय' रखने से दशाक्षरी विद्या आद्या-कालिका होगी—**'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा'**। (३) फिर उसमें 'परमेश्वरि' के पश्चात् 'कालिके' पद रख कर, पूर्व-वत् वीज-त्रय रख कर ठ-द्वय लगाने से षोडशाक्षरी विद्या महा-आद्या-काली होगी—

'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा'। किसी-किसी के मत से इसी मन्त्र में प्रणव आदि में लगा कर 'सप्त-दशी' भी मानते हैं। इन तीनों विद्याओं के ध्यान तथा मन्त्र निम्न प्रकार हैं—

लाल कमल पर बैठी हुई, श्याम-वर्णवाली, दो बाहुओं में वर और अभय धारण किए हुई, लाल-वस्त्र तथा नाना अलङ्कार पहिने, तीन नेत्रों से माध्वीक मद्य-पान कर नृत्य करते हुए महा-काल का नृत्य देख रही हैं। इस प्रकार 'आद्या-काली' का 'ध्यान' करे।

'यन्त्र' इस प्रकार बनाए—**पहले ह्रीं-गर्भ अधो-मुख त्रिकोण लिखे, फिर अष्ट-कर्णिका-युक्त अष्ट-दल अङ्कित करे। तदनन्तर चतुर्द्वारात्मक भू-पुर खींचे।**

प्रत्येक विद्या ग्रहण कर, हो सके तो वर्ण-लक्ष, नहीं तो एक लक्ष का अवश्य ही 'पुरश्चरण' कर दूसरी विद्या ग्रहण करनी चाहिए। नहीं तो मन्त्र-ऋण होगा। 'आद्या-विद्या'-ग्रहण के समय में 'शाक्ता-भिषेक' होगा और अन्त की विद्या-ग्रहण के समय में 'कौलाभिषेक' होगा। एक ही आम्नाय में रहनेवाले के लिए, इसी अवस्था में 'पादुका - दीक्षा' भी होगी और इसी अभिषेक को लघु पूर्णाभिषेक माना जाएगा।

(२) कादि (कुण्डलिनी)-क्रम

अब 'दक्षिणाम्नाय' के कादि-क्रम का वर्णन करता हूँ। इस क्रम में तीन विद्याएँ इस प्रकार हैं—(१) कुन्ती-कूर्च-लज्जा त्र्यक्षरी विद्या श्यामा-काली—**'क्रीं हूं ह्रीं'**। (२) फिर उसमें 'तीर' और 'अस्त्र' लगाने से पञ्चाक्षरी विद्या श्यामा-कालिका—**'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्'**। इन दोनों का 'ध्यान' एक ही है। यथा—

श्मशान में शव-रूप शिव के ऊपर खड़ी, नग्ना, शव-हस्त-बद्ध-कटी, मुण्ड-माला-धरा, घोर-दंष्ट्रा, हसन्मुखी, त्रि-नेत्रा, घोर-रूपा, शशि-शेखरा, मुक्त-केशी, ललज्जिह्वा, दोनों कानों में दो शव लटकाए हुई, चतुर्भुजी, वाम-भुजाओं में ऊपर खड्ग और नीचे मुण्ड, दक्ष-भुजाओं में ऊपर अभय और नीचे वर धारण किए हुई, श्याम-वर्णवाली श्यामा-काली का ध्यान करे।

(३) काली - त्रय, कूर्च-द्वय, लज्जा-द्वय के पश्चात् 'दक्षिणा कालिका' का सम्बोधन कर, उपर्युक्त वीजों का पुनः उच्चारण कर, ठ-द्वय लगाने से द्वा-विंशाक्षरी विद्या होगी दक्षिणा-काली—**क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा**। इनका 'ध्यान' इस प्रकार है—

पूर्वोक्त श्यामा-काली स्वरूपा, महा-काल के साथ विपरीत-रता।

मतान्तर में ब्रह्मादि-पञ्च-महा-प्रेतादि के ऊपर इनका ध्यान किया जाता है।

कालिका की कादि-विद्या का 'यन्त्र' इस प्रकार है—**पहले षट्-कोण बनाए, फिर तीन अधो-मुख त्रिकोण एक के बाद एक अङ्कित करे, फिर अष्ट-कोण बनाकर चतुर्द्वारात्मक भू-पुर बनाए। इस यन्त्र को दक्षिणाम्नाय का 'श्रीयन्त्र' कहते हैं।**

(३) सादि (संवरौधि)-क्रम

अब 'दक्षिणाम्नाय' के 'सादि-क्रम' का वर्णन करता हूँ। यह क्रम 'नीला-काली' अथवा तारा का है। इसमें तीन विद्याएँ इस प्रकार है—(१) वधू, कूर्च, लज्जा, तीर, अस्त्र—पञ्चाक्षरी विद्या एक-जटा—**स्त्रीं हूं ह्रीं हुं फट्**। इनका 'ध्यान' ऐसा है—**श्वेताम्बरा, चन्द्रार्द्ध-धारिणी, कर्त्री-कपाल-धरा, द्वि-भुजा, त्रि-नेत्रा, शारद-चन्द्र-वत् श्वेत-वर्णा।**

(२) तार, रमा, माया, हार्द्ध-शक्ति, वर्मास्त्र, ङे-युत नील-सरस्वती, ठ-द्वय—चतुर्दशाक्षरी विद्या नील-सरस्वती—ॐ **श्रीं ह्रीं ह्सौः हूं फट् नील-सरस्वत्यै स्वाहा।** इनका 'ध्यान' ऐसा है—**शवासना, सर्पालङ्कारा, बाहु - चतुष्टय में कर्त्री, कपाल, चषक तथा त्रिशूल - धारिणी, मुण्ड - माली, त्रि - नेत्रा, नील-वर्णा।**

(३) इसमें 'उग्र-तारा' हैं। इन्हें 'महा-नील-सरस्वती' भी कहते हैं। तार, त्रपा, वधू, वर्मास्त्र—सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या उग्र-तारा (महा-नील-सरस्वती)—ॐ **ह्रीं स्त्रीं हुं फट्।** इनका 'ध्यान' ऐसा है—**शव-रूप शिव के ऊपर प्रत्यालीढ होकर खड़ी, घोर-रूपा, अट्टहासा, त्रि-नेत्रा, चारों बाहु में खड्ग, कमल, कर्त्री तथा कपाल-पात्र-धारिणी, व्याघ्र-चर्माम्बरा, नील-कमल-वत् वर्णवाली।**

'दक्षिणाम्नाय' सादि - विद्या 'नीला - काली' की सभी विद्याएँ एक ही, परन्तु अपनी - अपनी गुरु-परम्परा के भेद से यन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। 'आवरण-पूजा' तो एक ही है। उक्त यन्त्रों में से एक को मैं ऐसा जानता हूँ—

पहले अधो-मुख त्रिकोण बनाए, जिसके मध्य में 'त्रीं' की भावना करे। फिर अष्ट-दल-कमल बनाए, जिसके उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के दलों के मध्य में क्रमशः 'ह्रीं', 'फट्', 'ठं', 'ठं' की भावना करे। अन्त में चतुर्द्वारात्मक भू-पुर लिखे।

दक्षिणाम्नाय काली का पंचम-क्रम

अब **'दक्षिणाम्नाय काली'** के **'पञ्चम-क्रम'** का वर्णन किया जाता है। सबसे प्रथम पूर्वोक्त 'आद्या-काली' का 'त्र्यक्षरी' मन्त्र। ध्यानादि पूर्व-वत्। निम्न प्रकार विनियोग करे—

'ब्रह्मा-ब्रह्मर्षयः ऋषयः, गायत्र्यादि छन्दांसि, आद्या-काली देवता, काली-बीजः बीजं, त्रपा-शक्तिः, रमा कीलकम्।'

'षड्-दीर्घ-भाजा माया' (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) से 'कर-न्यास' करे। 'यन्त्र' पूर्व-वत्।

द्वितीया विद्या—पूर्वोक्त 'महा-आद्या-काली' का 'षोडशाक्षरी' मन्त्र। न्यास-ध्यानादि आद्या-काली-वत्। इन दोनों का 'यन्त्र' पूर्व-वत् एक ही है।

तृतीया विद्या—'सिद्धि - काली' का मन्त्र। प्रणव, हृल्लेखा, रति - बीज, भगान्वित भानु और ठ-द्वय का उच्चारण करने से 'षडक्षरी-विद्या' होगी—ॐ **ह्रीं क्रीं मे स्वाहा।**

रति-बीज (क्रीं) को मत-भेद से तथा आम्नाय-भेद से काम-बीज (क्लीं) अथवा काली-बीज (क्रीं) मानते हैं। काम-बीज (क्लीं) मानें, तो यह विद्या 'उत्तराम्नायात्मिका' होगी और कर-षडङ्ग-न्यास षड्-दीर्घ-भाजा 'काम-बीज' (क्लां, क्लीं इत्यादि) से होगा और गुह्य-काली के 'श्री-यन्त्र' में पूजा होगी। 'काली-बीज' मानें, तो यह विद्या 'दक्षिणाम्नायात्मिका' होगी और कर-षडङ्ग-न्यास षड्-दीर्घ-भाजा 'काली-बीज' (क्रां, क्रीं इत्यादि) से होगा तथा दक्षिणाम्नाय 'श्री-यन्त्र' में पूजा होगी। विनियोग तथा 'ध्यान' दोनों ही आम्नाय में एक ही हैं—

भैरव ऋषि, विराट् छन्द, रति बीज (अपने **मतानुसार 'काम' अथवा 'काली'-बीज) व लज्जा शक्ति**— इस मन्त्र में 'कीलक' नहीं है।

त्रि-नेत्रा, रक्तालिप्त-शरीरा, नग्ना, **मुक्त - केशी, दोनों भुजाओं में रुधिर-पूर्ण कपाल-पात्र धारण कर रुधिर - पान कर** रहनेवाली, दीप्त - जिह्वा, **मणि - मय - मुकुटा, नील-कमल-वत् वर्णवाली 'सिद्धि-काली'।**

चतुर्थी विद्या--'श्यामा-काली' पूर्व-वत् त्र्यक्षरी विद्या। ध्यानादि पूर्व-वत्। इनके विनियोग में ऋषि आदि निम्न प्रकार हैं--

महा-काल ऋषि, उष्णिक् छन्द, त्रपा वीज, कूर्च शक्ति, कुन्ती कीलक।

षड्-भाजा 'काली-वीज' (क्रां, क्रीं इत्यादि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'यन्त्र' दक्षिणाम्नाय का पूर्वोक्त श्री-यन्त्र।

पञ्चमी विद्या--'दक्षिणा - काली' पूर्व-वत् द्वा-विंशाक्षरी विद्या। ध्यानादि पूर्व-वत्। इनके विनियोग का रूप यह है--

'महा-काल-भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द, त्रपा वीज, कूर्च शक्ति, कुन्ती कीलक।

प्रणवादि षड्-भाजा काली-वीज (ॐ क्रां, ॐ क्रीं इत्यादि) से कर-षडङ्ग-न्यास।

इसके बाद 'कौलाभिषेक' (लघु-पूर्णाभिषेक), 'पादुका-दीक्षा', दक्षिणाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' और दक्षिणाम्नाय 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करनी चाहिए। 'पादुका-दीक्षा' में अपनी-अपनी गुरु-परम्परा के भेद से मन्त्र तथा नाम पृथक् होते हैं। दिव्यौघादि भी वैसे ही हैं। दिव्यौघादि के विषय में मैं जो जानता हूँ, वे निम्न प्रकार हैं--

दिव्यौघ--महा-देव्यम्बा, महा-देवानन्द-नाथ, त्रिपुरानन्द-नाथ, भैरवानन्द-नाथ।

सिद्धौघ--ब्रह्मानन्द-नाथ, पूर्णदेवानन्द-नाथ, चलच्चित्तानन्द-नाथ, चलाचलानन्द-नाथ, कुमारानन्द-नाथ, क्रोधानन्द-नाथ, वरदानन्द-नाथ, स्मर-दीपनानन्द-नाथ, मायाम्बा-देवी।

मानवौघ--विमलानन्द - नाथ, कुशलानन्द - नाथ, भीमसेनानन्द - नाथ, सुधाकरानन्द - नाथ, प्रह्लादानन्द-नाथ, सनकानन्द-नाथ, वशिष्ठानन्द-नाथ, बोधानन्द-नाथ, मीनानन्द-नाथ, गोरक्षानन्द-नाथ, भोजदेवानन्द-नाथ, प्रजापत्यानन्द-नाथ, मूलदेवानन्द-नाथ, रन्ति-देव्यम्बा, विघ्नेश्वरानन्द-नाथ, हुताशनानन्द-नाथ, समयानन्द-नाथ, सन्तोषानन्द-नाथ।

'दक्षिणाम्नाय' की सर्वाधिकार निर्वाण-दक्षिण-काली अतीव रहस्य-पूर्ण तथा गोप्य हैं। इनके मन्त्र का विनियोग निम्न प्रकार है--

निर्वाण सम्वर्तानन्द-नाथ निर्वाण-मन्त्रस्य कालाग्नि ऋषि। बृहती छन्द। निर्वाण-दक्षिण-काली देवता। प्रासाद-वीज वीज। परा-प्रासाद - वीज शक्ति। औकार और विसर्ग-युत लेख कीलकं। भोग-मोक्षार्थे विनियोगः।

'सर्ग-युत-लेख' का उच्चारण कर कर-शुद्धि करे। उसी (लेख) अक्षर को नाद-विन्दु-युत षड्-भाजा वीजों से कर-षडङ्ग-न्यास करे। जिन अक्षरों तथा वीजों का यहाँ 'प्रासाद, 'परा-प्रासाद', 'लेख' आदि नामों से सङ्केत किया गया है, जिज्ञासु अधिकारी उन्हें 'वर्ण-वीज-कोश' से समझ सकते हैं।

'मेधा-दीक्षा' में--'दक्षिणा - काली' की द्वा - विंशाक्षरी विद्या को तीन भागों में विभाजित कर, 'ब्रह्म-गायत्री' के प्रथम पाद के अन्त में प्रथम भाग, द्वितीय पाद के अन्त में द्वितीय भाग, फिर तृतीय पाद के अन्त में तृतीय भाग, तत्पश्चात् गायत्री का तुरीय पाद उच्चारण करने से दक्षिणाम्नाय 'मेधा-दीक्षा' होगी।

'दक्षिणाम्नाय-काली' की जब 'मेधा-दीक्षा' होगी, तब साथ-साथ ही **'सम्वर्तेश्वर शाम्भव'** की दीक्षा भी होगी, जिसका 'विनियोग' निम्न प्रकार है--**शब्द - ब्रह्म ऋषिः, गायत्र्यादि - नाना - विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वस्त्र-विन्दु-नाद-युत क्षकार बीजं** (शाम्भव - विद्या में 'कीलक' तथा 'शक्ति

हीं हैं)। प्रणव तथा पञ्च-तार- इन छः वीजों के प्रत्येक वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' होगा। कर - न्यास कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ में समाप्त होगा। 'सम्वर्त्तेश्वर शाम्भव' का 'ध्यान' है—

रक्ताङ्ग-युत-विंश-बाहु-कमलां षड्-वक्त्र-पङ्केरुहाम । खट्वाङ्गांकुश-पात्र-पाश - डमरूंश्चकासि-शरान् ।
कुन्तं वज्र-भुजङ्ग-राज-जप-माला-डिण्डिमान् विभ्रतीं । विश्वेशीं परमां स्मितां रहसि संवर्त्तेश्वरीं भावये ।।
सम्वर्त्तेशी महा-देवी रुद्र-प्रेतासन-स्थिता ।

'सम्वर्त्तेश्वर' के रक्त-वर्ण के दो कूटों में से प्रथम कूट की 'मणिपूर-चक्र' में और दूसरे कूट की 'मूलाधार' में भावना कर 'मूलाधार' में पूर्वोक्त-रूपा 'सम्वर्त्तेश्वरी' का ध्यान कर उन्हें 'मणिपुर'-स्थित वैसे ही रक्त-वर्ण, विंश-बाहु 'सम्वर्त्तेश्वर' से मिलाकर 'सहस्रार' में पहुँचाकर, सामरस्य कर, सम्वर्त्तेश्वर-मूल-मन्त्र का यथा-शक्ति जप कर निम्न मन्त्र से विश्रान्ति करे —

सम्वर्त्त - मूलान्ते श्रीसम्वर्त्तेश्वरानन्दनाथ-सम्वर्त्तेश्वरी-पराम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

इसी प्रकार 'मणिपुर' के 'दक्षिणाम्नायात्मक-चक्र' का शाम्भव-क्रम है। अन्य चक्रों के 'शाम्भव-क्रम' में भी प्रत्येक में दो-दो कूट शक्ति मूलाधार में तथा पुरुष, जिस चक्र का शाम्भव है, उसी चक्र में रहते हैं। यहाँ अन्य चक्रों के 'शाम्भव' तथा 'चक्र' के नाम, ध्यान एवं न्यास के साथ कूट के वर्ण बताता हूँ--

तारा विद्या की मेधा-दीक्षा के साथ नवात्म-शाम्भव, मूलाधार-चक्र, कूट का वर्ण अरुण। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाणी वीज।** व्योम - भृगु - युत-रेफ-भूषित-फकार के षड्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'--

नील - वर्णां कुब्ज-रूपां, षडानन - सरोरुहां । पूर्व - वक्त्रे नील - वर्णां, दक्षिणे लोहिताननम् ।।
पश्चिमे पीत-वक्त्रं च, शुभ्र-वक्त्रं तथोत्तरे । ईशाने शुक्ल - वक्त्रं तु, ह्यूर्ध्वे रक्तास्यमुत्तमम् ।।
चारु-द्वादश-दोर्दण्डां, षट्-शूलान् दक्षिणैः करैः । वामैश्च रस-चक्राणि, दधानां घोर - दंष्ट्रिणीम् ।।
सर्पास्थि-रत्न-भूषाङ्गीं, मुण्ड-माला-धरां पराम् । व्याघ्र-चर्म-परीधानां, सिंह-चर्मोत्तरीयकाम् ।।
दिव्याभरण - भूषाङ्गीमट्ट - हासां भयानकाम् । अष्टा-विंशति-वर्षीयां बर्बरोर्ध्व - शिरोरुहाम् ।
ब्रह्म-प्रेतासनारूढां सम्वर्त्तेशीं भजाम्यहम् ।।

उपाम्नाय चामुण्डा की मेधा-दीक्षा के साथ हंसेश्वर-शाम्भव, अनाहत-चक्र, कूट का वर्ण धूम्र। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि - नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, व्योम-भृगु-रेफैकार-युत-फकार स-नाद-विन्दु वीज।** पञ्च-तारान्ते व्योम-रेफ-युत भृगु के षट्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'—

नानाभरण-भूषाढ्यां, कपिलाङ्गीं रसाननाम् । शूलं सृणिं ध्वजां मुण्डं, पाशं चापं शरं तथा ।।
चक्रं भुजङ्गं खड्गं चाभयदं वरदं तथा ।।
बिभ्राणां द्वादशैर्हस्तैः, पाद - द्वादशभिर्युतान् । ईश्वर - प्रेतमासीनां, चन्द्र - चूडां त्रिलोचनाम् ।।
नव-यौवन-सम्पन्नां, ध्यायेद्धंसेश्वरीं पराम् ।।

उत्तराम्नाय गुह्य-काली की मेधा-दीक्षा के साथ विच्चेश्वर शाम्भव, विशुद्धि-चक्र, कूट का वर्ण शुभ्र। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता,** आकाश वीज। व्योम-भृगु-रेफ के षड्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'--

शूलं चक्रांकुशौ पाशं, बिभ्रतीं च वर - प्रदाम् । वामके तर्जनीं शङ्खं, ध्वजां च नृ - शिरस्तथा ।।
चापाभयं च बिभ्राणां, तद्-वर्तीं च कुलेश्वरीम् । सदा-शिवाख्य-प्रेतस्थां परां विच्चेश्वरीं भजे ।।

पूर्वाम्नाय की मेधा-दीक्षा के साथ द्वीपेश्वर शाम्भव, स्वाधिष्ठान चक्र, कूट का वर्ण शुक्ल। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाम-कर्ण-भूषित-सार्द्ध-चन्द्र-व्योम-भृगु बीज।** व्योम-भृगु के षड्-दीर्घ-भाजा बीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'—

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-शूल-पात्राभय-प्रदाम्। वरदां रत्न - भूषाढ्यां, कृष्णाभां सु - स्मिताननाम्॥
युवतीं पीत-वसनां, विष्णु-प्रेतासन-स्थिताम्। भजे द्वीपेश्वरीं रम्यां, विशाल - त्रय - लोचनाम्॥

यह शाम्भव-विद्या अन्तर्यागात्मक विद्या है। अतः ४ प्रकार की सन्ध्याओं की समाप्ति के बाद निशा-पूजा (बहिर्याग) कर उस पूजा की तत्त्व-शुद्धि की अवस्था में निगमागम-समष्टि विद्या मेधा-मन्त्र का जप कर शाम्भव-चिन्तनादि (अन्तर्याग) के लिए शाम्भव दीक्षा का प्रयोग होगा।

काली-विद्या की सन्ध्या

अब 'सन्ध्या' के विषय में लिखता हूँ। जिस प्रकार गायत्री के तुरीय-पाद के ग्रहण के पश्चात् चार सन्ध्याओं का विधान है, उसी प्रकार सर्वाधिकार-दीक्षा प्राप्त करनेवालों के लिए भी है। 'दक्षिणाम्नाय' में वह विधान निम्न प्रकार है—१ प्रातः-काल 'गायत्री'-जप के पश्चात् 'महाऽऽद्या-काली' की षोडशाक्षरी, पूर्व-वत् ध्यान कर, जप के पश्चात् 'दक्षिणा-काली' का निम्न प्रकार का ध्यान करे—

नीलोत्पल के समान वर्णवाली, दिगम्बरा, ललज्जिह्वा, दंष्ट्राली, घोर-रूपिणी, अट्टाट्टहास-निरता, मुण्ड-माला-धरा, चारों बाहु में नर-मुण्ड, खड्ग, कमल तथा वर धारण किए हुई, शव-रूपी शिव के ऊपर खड़ी, जटा-जूटा।

ध्यान कर सृष्टि-क्रम से पूर्वोक्त 'द्वा-विंशाक्षरी' का जप करे।

२ मध्याह्न-काल में 'सावित्री'-जप के पश्चात् 'श्यामा-काली' की त्र्यक्षरी का पूर्व-वत् विपरीत-रतातुरा ध्यान कर, स्थिति-क्रम से पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी का जप करे।

३ सायं-काल में 'सरस्वती'-जप के पश्चात् 'सिद्धि-काली' की षडक्षरी का पूर्व-वत् ध्यान कर, जप के पश्चात् 'दक्षिणा-काली' का **अञ्जनादि-प्रभा, श्यामा, नागालङ्कार-भूषिता, अन्य पूर्व-वत्, विपरीत-रतातुरा ध्यान कर** संहार-क्रम से पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी का जप करे।

४ रात्रि-काल में 'चतुष्पदी गायत्री' - जप के पश्चात् सर्वाधिकार 'निर्वाण दक्षिणा-काली' विद्या का जप करे।

५ तत्पश्चात् निगमागम-समष्टि-रूपा 'मेधा-मन्त्र' का जप करे।

पञ्चम सन्ध्या को 'भाषा-रूप' मानते हैं।

दक्षिणाम्नाय तारा का पञ्च-क्रम

'तारा' के उपासकों को तारा का पञ्च-क्रम कर 'सर्वाधिकार-दीक्षा' पानी होगी। पूर्ण-क्रम तथा अन्य क्रमों में अधराम्नायोपासना के लिए अधराम्नाय-नायिका आर्य-तारा होने के कारण उनके प्रति-निधि रूप महोग्र-तारा की उपासना दक्षिणाम्नाय से अधराम्नाय - मिश्रित होगी, क्योंकि आर्य-तारा बौद्ध-मार्गोपासिता है। इस क्रम में सबसे पहले त्र्यक्षरी विद्या ली जाती है—तारिणी प्रणव, माया और वधू-बीज एवं सिद्ध-मन्त्र होने के कारण इनका विनियोग तथा न्यासादि नहीं है। ध्यान पूर्वोक्त 'एक-जटा' के समान है।

द्वितीय क्रम में 'एक-जटा' की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी। विनियोग है—

वशिष्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, एक-जटा देवता, कूर्च बीज, लज्जा शक्ति, स्त्री कीलक।

षड्-दीर्घ-भाजा माया (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) से कर-षडङ्ग-न्यास। ध्यान पूर्व-वत्।

तृतीय क्रम में 'नील-सरस्वती' की पूर्वोक्त चतुर्दशाक्षरी। विनियोग है—

ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, नील-सरस्वती देवता।

इस मन्त्र में वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं है क्योंकि यह अकीलित है।

कर - षडङ्ग - न्यास इस प्रकार हैं—दो, एक, एक, दो, छः, दो मूल - मन्त्राक्षरों से। ध्यान पूर्वोक्त-वत्।

चतुर्थ क्रम में 'उग्र-तारा' (महा-नील-सरस्वती) की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी। विनियोग है—

अक्षोभ्य ऋषि, बृहती छन्द, महा-नील-सरस्वत्युग्र-तारा देवता, कूर्च वीज, त्रपा शक्ति, स्त्री-वीज कीलक।

षड्-दीर्घ-भाजा माया (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) में **अखिल-वाग्-रूपिणी, अखण्ड-वाग्-रूपिणी, ब्रह्म-वाग्-रूपिणी, विष्णु-वाग्-रूपिणी, रुद्र-वाग्-रूपिणी** और **सर्व-वाग्-रूपिणी**—इन छः नामों में ङेऽन्त (चतुर्थी विभक्ति) लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान पूर्वोक्त-वत्।

पञ्चम क्रम में 'महोग्र-तारा'—तार, लज्जा, स्त्री, कूर्च, अंकुश, रमा के पश्चात् 'उग्र-तारा' का सम्बोधन कर शक्ति, काम, त्रपा, कमला, ठ-द्वय का उच्चारण करने से षोडशाक्षरी होगी। ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यास पूर्वोक्त 'उग्र-तारा' के समान। इनका ध्यान ऐसा है—

सृष्टि-रूप में—**कोटि-दिवाकर के समान कान्ति, रक्त-वर्णवाली, रक्त-वसना, चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखरा, नानालङ्कार-भूषिता, पाश-कर्त्री-अंकुश तथा पद्म-धारिणी।**

स्थिति-रूप में—**प्रत्यालीढ-पदा, घोरा, मुण्ड-माला-धरा, खर्वा, लम्बोदरी, कटि में व्याघ्र-चर्म पहिने, नव-यौवन-सम्पन्ना, ललज्जिह्वा, हस्त - चर्मोत्तरीयका, अस्थ्यालङ्कार - भूषाढ्या, वर्तुल-नेत्र-त्रया, चतुर्हस्त में खड्ग, कर्त्री, मुण्ड और पद्म-धारिणी, श्वेत-पद्मोपरि-स्थिता।**

संहार-रूप में—**प्रकट-विकट-दंष्ट्रा, घोर-रूपाऽट्टहासा, मुण्ड - माली, मेघ-वर्णा, अति-खर्वा, बाहु-द्वय में कर्त्री और कपाल-धारिणी।**

तत्पश्चात् कौलाभिषेक (लघु-पूर्णाभिषेक), पादुका-दीक्षा, तारा सर्वाधिकार-दीक्षा तथा तारा मेधा-दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। 'सर्वाधिकार-निर्वाणेश्वरी उग्र-तारा' के मन्त्र का विनियोग निम्न प्रकार है—

अक्षोभ्य ऋषि, जगती छन्द, निर्वाणोग्र-तारा देवता, त्रपा वीज, स्त्री शक्ति, कूर्च कीलक, आराध्यर्थ-सिद्धये विनियोग।

कूर्च से कर-शोधन कर उसी वीज से कर-षडङ्ग-न्यास करे।

मेधा - दीक्षा में 'महोग्र-तारा' की षोडशाक्षरी विद्या का तीन भागों में विभाजन कर ब्रह्म-गायत्री में पूर्व-वत् मिला ले। यह विद्या दक्षिणाम्नायात्मिका है। फिर भी अधराम्नाय - मिश्रित कर इसकी उपासना होती है। अतः इसकी आवरण-पूजा वाम हस्त से होती है। अन्य आम्नाय में '**श्रीपादुकां पूजयामि नमः**' के स्थान में '**वज्र-पुष्पं प्रतीक्ष स्वाहा**' कहना होगा।

तारा-विद्या की सन्ध्या

तारा-विद्या का सन्ध्या-क्रम इस प्रकार है—

प्रातः-काल में 'एक-जटा' की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' की षोडशाक्षरी-विद्या का सृष्टि-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।१।।

मध्याह्न-काल में 'उग्र-तारा' विद्या की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' विद्या की षोडशाक्षरी-विद्या का स्थिति-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।२।।

सायं-काल में 'नील-सरस्वती' विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' विद्या का संहार-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।३।।

रात्रि-काल में 'सर्वाधिकार निर्वाणोग्र-तारा' का न्यास और जप करे ।।४।।

तत्पश्चात् निगमागम-रूपिणी 'मेधा-विद्या' का जप करे ।।५।।

सृष्टि, स्थिति तथा संहार-क्रम से सभी आम्नाय-नायिकाओं के न्यास, ध्यान, जपादि के नियम पृथक्-पृथक् हैं। उनमें से ध्यान तो मैं दे रहा हूँ, अन्य विधान गुरु-देव से जान लेना चाहिए। इस तन्त्र-शास्त्र में गुरु का होना आवश्यक है। जहाँ तक लिखने के योग्य है, वहीं तक लिखा जा सकता है। 'स्वयं-शिक्षक' लेख तान्त्रिक साधना के विषय में नहीं लिखा जा सकता। मन्त्र भी स्पष्ट न देकर प्रायः गुप्त शैली में ही प्रकाशित किए जाते हैं, जिससे अधिकारी लोग ही समझ सकें।

'ऊर्ध्वाम्नाय'-क्रम की बाला-विद्या

अब ऊर्ध्वाम्नाय की **बाला-विद्या** का वर्णन करता हूँ। बाला-विद्या भी **श्रीविद्या** हैं। अतः इनके क्रम में भी—**१ हादि, २ कादि** तथा **३ सादि**—तीनों ही क्रम विद्यमान हैं। वे ऐसे हैं—

हादि-क्रम में त्रिपुरा बाला की लज्जा, काम और हार्द्ध-युक्त शक्ति-वीज 'त्र्यक्षरी विद्या' है—**ह्लीं क्लीं ह्सौः**। विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, गायत्री छन्द, बाला-त्रिपुरा देवता, माया (ह्लीं) वीज, हार्द-युक्त शक्ति-वीज (ह्सौः) शक्ति, काम-वीज (क्लीं) कीलक।

मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति करके कर-षडङ्ग-न्यास करे। इनका 'ध्यान' ऐसा है—

बालावस्था, सर्वालङ्कार-युता, लाल-वर्णवाली, चार हाथों में पाश, अंकुश, पुस्तक तथा जप-माला धारण कर रक्त-पद्म पर बैठी हुई त्रिपुरा बाला।

तत्पश्चात् बाला त्रिपुरा की वाक्, काम, शक्ति-वीज 'त्र्यक्षरी विद्या' है—**'ऐं क्लीं सौः'**। इसका विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, बाला त्रिपुरा देवता, वाणी (ऐं) वीज, शक्ति-वीज (सौः) शक्ति, काम-वीज (क्लीं) कीलक।

मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति करके 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका 'ध्यान' ऐसा है—**रक्ताम्बरा, नानालङ्कार-भूषिता, चन्द्र-चूडा, त्रि-नेत्रा, अरुणा, चतुर्भुजा, पुस्तक, जप-माला, वर तथा अभय-करोद्यता, रक्ताम्बुज पर बैठी हुई त्रिपुरा-बाला।**

इसके बाद बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की वाणी, माया, रमा, वाक्, काम तथा शक्ति—यह 'षडक्षरी विद्या' है—**ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः**। इन्हें **'श्रीविद्या-महा-षडार्णा'** भी कहते हैं। इनका ध्यान (सृष्टि-रूप)

ऐसा है— अरुण-किरण-जालैरञ्जिता, तप्त-काञ्चन - वर्णा, चन्द्रार्द्ध - चूडा-मणि, दिव्यालङ्कार - भूषिता, रक्ताम्बरा, चतुर्भुजा, पाशांकुश-वराभय-करा, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर रूप चार पायों और सदा-शिव-रूप फलक के बने हुए रत्न-मय दिव्य सिंहासन के ऊपर रक्त-पद्मोपरि बैठी हुई बाला त्रिपुर-सुन्दरी।

'स्थिति-रूप' का इनका ध्यान ऐसा है—मुक्ता-कुन्देन्दु-गौरा, आयुध, अलङ्कार तथा आसनादि सब सृष्टि-रूप-वत्।

'संहार-रूप ऐसा है—महा-स्वर्णा, मुण्ड-माला-धरा, महा-चर्म (नर - चर्म) वस्त्रा, दो बाहु से पूर्ण कपाल-पात्र-धारिणी, शिव-रूप प्रेतोपरि बैठी हुई बाला-त्रिपुर-सुन्दरी।

ध्यान के ये तीन प्रकार केवल पाँच के क्रम वालों के लिए 'त्रिकाल-सन्ध्या' हेतु हैं। हादि, कादि तथा सादि-क्रम वालों के लिए केवल 'सृष्टि-ध्यान' पर्याप्त है।

अव 'कादि-क्रम' का वर्णन करता हूँ। त्रिपुरा बाला की काम, रमा, माया, त्रिपुरे वाले, ठ-द्वय यह 'दशाक्षरी विद्या' है— क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिपुरे बाले स्वाहा। विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, गायत्री-छन्द, त्रिपुर-वाला देवता, काम (क्लीं) वीज, माया (ह्रीं) शक्ति, रमा (श्रीं) कीलक।

पूर्व-वत् तीन वीजों की द्विरावृत्ति से 'कर - षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान' पूर्व-वत्—पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता।

तत्पश्चात् वाला-सुन्दरी की (माया, काम, शक्ति भगवत्यै बाला-सुन्दर्यै तथा दण्डः) चतुर्दशाक्षरी विद्या। दक्षिणा-मूर्ति ऋषि, पक्तिश्छन्द, वाला-सुन्दरी देवता, माया (ह्रीं) वीज, शक्ति - बीज (ह्सौः) शक्तिः, काम (क्लीं) कीलक। मूल-मन्त्र के १, १, १, ४, ५, २ अक्षरों से 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान' वाला-त्रिपुरा-वत्। इनमें विशेष 'मुण्ड-माला' का अलङ्कार है। तत्पश्चात् वाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या'।

अब सादि-क्रम का वर्णन करता हूँ। त्रिपुरा-वाला की (शक्ति, काम, वाक्, त्रिपुर-बालायै तथा दण्डः) एकादशाक्षरी विद्या। दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, त्रिपुरा - बाला देवता, वाक् (ऐं) बीज, शक्ति-बीज (ह्सौः) शक्ति, काम (क्लीं) कीलक। १, १, १, ३, ३, २ से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्व-वत्—पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता। तत्पश्चात् सिद्ध-त्रिपुरा-बाला की (भृगु ब्रह्म-धरा-वह्नि - वामाक्षी-विन्दु-भूषित कूटाक्षर, दहनान्त्य-महा-काल-भुजङ्ग-पुरुषोत्तमाः मन्वर्घो सेन्दु-संयुक्ताः कूटाक्षर, वाणी-बीज, त्रिपुरे सर्व-वाञ्छितं देहि, दण्डः तथा ठ-द्वयं) सप्त - दशाक्षरी विद्या। दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, गायत्री छन्द, सिद्ध-त्रिपुरा-वाला देवता। इनके वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। १, १, ४, ७, २, २ से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्व-वत्—पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता। तत्पश्चात् वाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या'।

अब बाला का सर्वोत्तम 'पञ्च क्रम' इस प्रकार है—सबसे प्रथम बाला - त्रिपुरा की पूर्वोक्त 'वागादि-त्र्यक्षरी' विद्या ॥१

द्वितीय-क्रम में बाला-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'चतुर्दशाक्षरी विद्या' ॥२

तृतीय-क्रम में वाला-भैरवी की (वियद् भृगु-हुताशस्थो भौतिको विन्दु - शेखरः एवं प्रथम-कूटं, वियत्तदादि-केन्द्राग्नि-स्थितं वामाक्षि-विन्दु-मत् एवं द्वितीय-कूटं और आकाश-भृगु-वह्निस्थो मनुः सर्गेन्दु-

खण्डवान् एवं तृतीय - कूटं) त्रिकूटाक्षरी विद्या । दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, पंक्तिश्छन्द, बाला-भैरवी देवता, प्रथम-कूट बीज, तृतीय-कूट शक्ति, द्वितीय-कूट कीलक । इन्हीं ३ कूटों की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग-न्यास' करे । 'ध्यान' पूर्वोक्त बाला-त्रिपुरा-वत् 'पुस्तकाक्ष-वराभय-हस्ता' है । विशेष इनका रूप रक्ता-लिप्त-पयोधरा तथा मुण्ड-माला-धरा युवती है । इनका 'त्रिपुर-भैरवी' भी कहते हैं ।।३

चतुर्थ-क्रम में महा-त्रिपुर-भैरवी की (व्योम-भृगु-कधराफञ्जनी में चन्द्रार्ध-युत ऐकार से प्रथम कूट, चन्द्रार्ध-युत ई-कार से द्वितीय कूट और सर्ग तथा चन्द्रार्ध-युत औ-कार से तृतीय कूट) त्रिकूटाक्षरी विद्या । दक्षिणा-मूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, महा-त्रिपुर-भैरवी देवता, प्रथम-कूट बीज, तृतीय - कूट शक्ति, द्वितीय-कूट कीलक । इस कूट-त्रय की द्विरावृत्ति कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्वोक्त बाला-भैरवी (त्रिपुर-भैरवी) वत् । विशेष 'महा-त्रिपुर-भैरवी' वृद्धा हैं ।।४

पञ्चम-क्रम में बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या' ।।५

तत्पश्चात् इन 'महा-षडर्ण-विद्या' में आद्यन्त प्रणव लगाकर 'निर्वाण-बाला' की दीक्षा कौला-भिषेक तथा पादुका दीक्षा के पश्चात् होगी । फिर 'महा-षडर्ण-विद्या का दो - दो बीजों के ३ भागों में विभाजन कर पूर्वोक्त गायत्री में समष्टि कर 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करे । बाला-क्रम की सकल ही विद्याओं का यन्त्र तथा आवरण-पूजा समान है । श्रीबाला-यन्त्र में किसी-किसी परम्परा में विन्दु के स्थान पर हार्द्ध-युत शक्ति-बीज लिखने की प्रथा है ।

'बाल - विद्या' की उपासना मनोविज्ञान के साथ 'राज - योग' से होती है । 'बाला - विद्या' की 'सन्ध्या-विधि' इस प्रकार की है—

बाला-विद्या की सन्ध्या

प्रातः-सन्ध्या में बाला-त्रिपुरा की वागादि 'त्र्यक्षरी' का साङ्गोपाङ्ग जप करे । बाला - त्रिपुर-सुन्दरी का 'सृष्टि-क्रम' से साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।१

मध्याह्न में बाला-भैरवी की 'त्रिकूटा विद्या' का साङ्गोपाङ्ग जप कर बाला - त्रिपुर-सुन्दरी की 'महा-षडर्ण-विद्या' का 'स्थिति-क्रम' से साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।२

सायं-काल में बाला-सुन्दरी की 'चतुर्दशाक्षरी विद्या' अथवा महा - त्रिपुर - भैरवी की 'त्रिकूटा-विद्या' का साङ्गोपाङ्ग जप कर बाला-त्रिपुरा-सुन्दरी की 'महा-षडर्ण-विद्या' का 'संहार - क्रम' से साङ्गो-पाङ्ग जप करे ।।३

तत्पश्चात् 'निर्वाण-बाला' का साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।४।। फिर 'मेधा-मन्त्र' का जप करे ।।५

दक्षिणाम्नायात्मक काली, तारा एवं ऊर्ध्वाम्नायात्मक बाला
का
'महा-क्रम' तथा 'पूर्ण-क्रम'

जो लोग 'महा-क्रम' तथा 'पूर्ण-क्रम' ग्रहण करते हैं, उनके लिए दक्षिणाम्नायात्मक काली के 'महा-क्रम' के लिए ३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम, फिर अधराम्नाय बौद्ध - मार्ग होने से उसके प्रतिनिधि दक्षिणाम्नाय में अधराम्नाय-मित पूर्वोक्त-वत् कर 'तारा' का क्रम महा - क्रम के लिए ३

क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम, तत्पश्चात् ऊर्ध्वाम्नाय बाला के महा-क्रम के लिए ३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम ग्रहण करने से हादि (हंस) क्रम पूर्ण होगा। अतः तदनन्तर श्रीविद्या का 'महा-हादि-कूट' ग्रहण करना चाहिए। इस कूट को 'काम-कूट' कहते हैं। **'आकाश-भृगु-चक्रचभ्र-मांस-माया'**—एवं एक-कूटाक्षरी विद्या। संमोहन ऋषि, गायत्री छन्द, कामेशी देवता, हकार वीज, माया शक्ति, भृगु-चक्रचभ्र-मांस कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा कूट के अन्त में **'द्रां संक्षोभण-वाणाय, द्रीं द्रावण-वाणाय, क्लीं आकर्षण-वाणाय, ब्लूं वशीकरण-वाणाय, सः उन्माद-वाणाय, द्रीं द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्व - वाणेभ्यः'** क्रमशः लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' ऐसा है—

बालार्क-कोटि-रुचिरां स्फटिकाक्ष-मालां, कोदण्डमिक्षु-जनितं स्मर-पञ्च-वाणान्।
विद्या च हस्त-कमलैर्दधतीं त्रि-नेत्रां, ध्यायेत् समस्त - जननीं नव-चन्द्र-चूडाम्॥

इसके बाद 'सादि-क्रम' ग्रहण करना चाहिए। यह (संवरोधि) क्रम आर्य-तारा का बौद्ध-मार्गीय है। अतः चण्डिका का 'सादि-क्रम' ग्रहण करे। इस क्रम में ईशानाम्नाय, आग्नेयाम्नाय तथा वायव्याम्नाय की समष्टि क्रम से पश्चिमाम्नाय त्रि-शक्ति-चामुण्डा में होगी एवं इसमें दश-क्रम हैं। इस क्रम को 'उपाम्नाय सादि-क्रम' भी कहते हैं। पूर्वाम्नाय तथा उत्तराम्नाय मिश्रित होकर ईशानाम्नाय बना है। अतः सबसे आगे पूर्वाम्नायात्मिका रक्त-दन्तिका की (**'भृगु-व्योम-चतुर्दश-स्वर-युत - संसर्ग' एवं 'बीजान्ते रक्त-दन्तिके' पदं के पश्चात् 'त्रपा'**) सप्ताक्षरी विद्या है। इनके ब्रह्मादि ऋषयः, गायत्र्यादि छन्दांसि, रक्त-दन्तिका देवता हैं। वीज, शक्ति और कीलक नहीं हैं। मन्त्र के पूर्व वीज के षड्-दीर्घ-भाजा से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका 'ध्यान' निम्न प्रकार है—

शवासनां तप्त-सुवर्ण-कान्ति, दोर्भिः सुचर्मासि-वराभयाढ्याम्।
चन्द्रार्द्ध-चूडां धृत-मुण्ड-मालां, श्री- रक्त-दन्तां मनसा स्मरामि॥१

तब उत्तराम्नायात्मिका पञ्च-वक्त्रा महा-काली की प्रणव (ॐ), सम्वर्ताग्नि ए-कार विधु-भूषित वीज-युगल, ब्रह्माग्नि, ए-कार विधु-भूषित वीज-द्वय, 'पशुं गृहाण' पद, वर्मास्त्र, ततः स्वाहा तारान्त—एवं चतुर्दशाक्षरी विद्या है। सिद्ध-विद्या होने के कारण इनके न्यासादि नहीं हैं। 'ध्यान' निम्न प्रकार है—

पञ्च-वक्त्रां महा-रौद्रीं प्रति-वक्त्र-त्रिलोचनां, शक्ति-शूलधनुर्वाण-खेट-खड्ग-वराभयान्।
दक्षदृक्ष-भुजैर्देवीं बिभ्राणां भोगि-भूषणां, अर्द्ध-चन्द्र-जटा-युक्तां जिह्वा-ललन-भीषणाम्॥
निर्मांसामेदुरामस्थि-पञ्जरां मुण्ड-मालिनीं, मत्त-व्यालोपवीताङ्गीं, भूत-वेताल-वेष्ठिताम्।
मेदो-वसोपलिप्ताङ्गीं, महा-प्रेतासन-स्थिताम्॥२

तत्-पश्चात् ईशानाम्नायात्मिका दश-वक्त्रा महा-काली की (**काम, वाणी, ततः महा - काल्यै तथा विच्चे**) काली नवार्ण विद्या। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, महा-काली देवता, वाणी वीज, काम शक्ति। कीलक नहीं है। षड्-दीर्घ-भाजा काम-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका ध्यान **'दश-वक्त्रा', 'दश-भुजा'** और **'दश-पादा खड्गं-चक्रेत्यादि'** सप्तशती-वर्णित महा-काली प्रसिद्ध ही हैं॥३

आग्नेयाम्नाय दक्षिणाम्नाय तथा पूर्वाम्नाय से मिश्रित होकर बना है। अतः प्रथम दक्षिणाम्नायात्मिका तारा की (**वाग्वा, लज्जा, रमा, काम, आकाश-भृगु-वह्नि - औकार - विसर्गाढ्या कूट, कूर्च, 'उग्र-तारे' पद तथा वर्मास्त्र**) द्वादशार्ण विद्या है। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, तारिणी देवता। वीज, शक्ति, कीलक नहीं हैं। षड्-दीर्घ माया-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' ऐसा है—

श्वेताम्बरां चन्द्र-कान्ति, चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखरां । कर्तरीं च कपालं च, कराभ्यां दधतीं भजे ।।४

ततः पूर्वाम्नायात्मिका महा - लक्ष्मी का (तार, लक्ष्मी, त्रपा, रमा, 'कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद' उच्चारण कर फिर पूर्वोक्त ४ बीजों को विपरीत से लगा कर 'महा - लक्ष्म्यै' पद तथा 'वण्ड:') अष्टाविंशाक्षरी विद्या है । दक्ष-प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, महा-लक्ष्मी देवता, रमा-वीज, माया शक्ति प्रणव कीलक । षड्-दीर्घ-भाजा रमा-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे । 'ध्यान' ऐसा है—

रत्नोद्यद्-वसु-पत्रं च पद्म-युग्मं च हेमजं, अग्र - रत्नावली - राजदादर्श - दधतीं पराम् ।
चतुर्भुजां स्फुरद्-रत्न-नूपुरां मुकुटोज्ज्वलां, ग्रैवेयाङ्गद-हाराढ्य-कङ्कणां रत्न-कुण्डलाम् ।।
पद्मासन-समासीनां द्युतिभिर्मण्डितां सदा, शुक्लाङ्गराग-वसनां महा-दिव्याङ्गना - नुताम् ।
एवं ध्यायेन्महा-लक्ष्मीं महदैश्वर्य - दायिनीम् ।।५

तत्पश्चात् आग्नेयाम्नायात्मिका महा-लक्ष्मी की (माया, रमा, लज्जा, ततः 'महा - लक्ष्म्यै' तथा 'विच्चे') लक्ष्मी नवार्णं विद्या है । विष्णु ऋषि, उष्णिक् छन्द, महा-लक्ष्मी देवता, लज्जा वीज, श्री शक्ति । कीलक नहीं है । षड्-दीर्घ-भाजा माया से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे । 'ध्यान' वही सप्तशती-वर्णित अष्टादश-भुजा महा-लक्ष्मी 'अक्ष-स्रक्' इत्यादि प्रसिद्ध ही है ।।६

अब वैसे ही वायव्याम्नाय उत्तराम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय से वना है । अतः उत्तराम्नाय में विपरीत-प्रत्यङ्गिरा भद्र-काली की (शिव-प्रासाद वीज, 'काली महा-काली' पद, 'किणि'-द्वय, अस्त्र तथा ठ-द्वय) चतुर्दशाक्षरी विद्या है । पिप्पलाद ऋषि, निवृच्छन्द, विपरीत-प्रत्यङ्गिरा भद्र-काली देवता । इनके वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं । मूल-मन्त्र के ६ पदों से कर-षडङ्ग-न्यास करे ।

यहाँ एक याद रखने की बात यह है कि इस चतुर्दशाक्षरी विद्या में यदि ऋष्यादि - न्यास न कर कनिष्ठिका से कर-न्यास आरम्भ करे, तो यह विद्या 'पश्चिमाम्नायात्मिका' होगी । ऋष्यादि-न्यास कर अंगुष्ठ से ही कर-न्यास आरम्भ करे, तो यह विद्या 'उत्तराम्नायात्मिका' होगी । यहाँ इस क्रम में 'उत्तराम्नाय' से उपासना होगी । इस विद्या की प्रयोगानुसार आम्नाय - भेद से उपासना होगी । इसका रहस्य गुरु-वक्त्र-गम्य है । दोनों ही आम्नायों में इनका 'ध्यान' इस प्रकार का एक ही है—

"क्षुत्क्षामा, कोटराक्षी, मसि-मलिन-मुखी, रुदन्ती, मुक्त-केशी, कृष्ण-दंष्ट्रा" हस्त-द्वय में ज्वलद-नल-शिखा तथा उग्र-पाश-धृता—एवं रूपा भद्र-काली मेरी रक्षा करे" ।।७

ततः पश्चिमाम्नायात्मिका सरस्वती (मोहिनी) मातङ्गी की (वाग्वीज, 'कामिनी-रञ्जिनी' पद तथा ठ-द्वय) नवाक्षरी विद्या है । सम्मोहन ऋषि, निवृत् छन्द, मोहिनी-मातङ्गी सरस्वती देवता, सरस्वती वीज । इनके 'शक्ति' और 'कीलक' नहीं हैं । वागन्ते कामिनी, रञ्जिनी, ठ-द्वय—एवं द्विरावृत्या 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे । इनका 'ध्यान' ऐसा है—

दिव्याम्बरां शुक-श्यामां, वीणा-वादन-तत्परां । गीयमानां सदाऽऽनन्दां, मातङ्गीं मोहिनीं भजे ।।

इस मन्त्र में वाग्-वीज न होने से यह विद्या अष्टाक्षरी सम्मोहिनी मातङ्गी होगी । इनका रूप घन-श्यामा है और ये दक्षिणाम्नायात्मिका हैं । इस विद्या का कलि-काल में फल नहीं होता क्योंकि 'लुप्त-बीजाश्च ये मन्त्राः, कलौ नैव फल-प्रदाः'—शङ्कर की ऐसी उक्ति है ।।८

तत्पश्चात् वायव्याम्नायात्मिका महा-सरस्वती की (वाणी, काम, वाक्, ततः 'सरस्वत्यै' तथा 'विच्चे') सरस्वती नवार्ण-विद्या है । महेश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, महा-सरस्वती देवता, काम-वीज,

वाणी शक्ति । 'कीलक' नहीं है । षड्-दीर्घ-भाजा स्वर से कर-षडङ्ग-न्यास करे । इनका ध्यान सप्तशती-वर्णित अष्ट-भुजा महा-सरस्वती **'घण्टा-शूलेत्यादि'** प्रसिद्ध ही है ।।९

अब इन सभी विद्याओं की समष्टि उपाम्नायेश्वरी पश्चिमाम्नायात्मिका त्रि - शक्ति-चामुण्डा में करे । त्रि-शक्ति - चामुण्डा की (**वाणी, माया, काम---ततः 'चामुण्डायै विच्चे**) महा - नवार्ण विद्या है । ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषय, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-छन्दांसि, महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिणी चामुण्डा देवता, वाणी वीज, माया शक्ति, कामः कीलक । इन तीन वीजों की द्विरावृत्ति कर एक-एक से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे । इनका 'ध्यान' ऐसा है---

ध्यायेच्छ्रीचामुण्डां देवीं, निर्मांसां घोर-दंष्ट्रिकां । कपालाभरणान् सङ्घ्रीं, शवस्थां चोर्ध्व-केशिनीम् ।।
कर्त्रिकां नर-मुण्डं च, धृत्वा तदन्त्र - भोजिनीं । चषके रुधिरं धृत्वा, पिवन्तीं ज्वलन - प्रभाम् ।।
श्मशान-निलयां भीमां, शिवाण्वीत-मध्यगाम् । नव - दुर्गा - समायुक्तां, दक्ष - यज्ञ - विनाशिनीम् ।।१०

एवं दश-क्रम समाप्त कर ब्राह्मणों के लिए 'ब्रह्म - चण्डिका', क्षत्रियों के लिए 'उग्र - चण्डिका', वैश्यों के लिए 'कुब्जि-चण्डिका' (वाल-कुब्जिका) तथा शूद्रों के लिए 'चण्डी' की दीक्षा ग्राह्य है । ऐहिक व्यवहार के लिए ये विद्याएँ अत्यावश्यक हैं । व्यावहारिक कर्म अपने-अपने वर्णानुसार पृथक्-पृथक् हैं ।

ब्रह्म-गायत्री के मन्त्र में ब्राह्मण तीन प्रणव, क्षत्रिय दो प्रणव और वैश्य एक प्रणव लगाकर जप करते हैं । इसी प्रकार 'चण्डिका' की दीक्षा में भी वर्ण के अनुसार भिन्नता होती है । गुप्तार्चनादि में 'देहाभिमान' नहीं रहता, 'आत्माभिमान' रहता है । अतः वर्ण के आधार पर किसी प्रकार की प्रथकता नहीं होती ।

उक्त विद्या पश्चिमाम्नायात्मक है । अतः इनकी उपासना 'कर्म - योग' से होगी । 'त्रि - शक्ति-चामुण्डा' का 'यन्त्र' बनाने के लिए क्रमशः **अधो-मुख त्रिकोण, उसके बाहर षट्-कोण, फिर अष्ट-दल, तब चतुर्विंशति दल और अन्त में चतुर्द्वारात्मक भू-पुर अङ्कित करे ।**

तब महा - नवार्ण के तीन (३) भाग कर पूर्व - वत् ब्रह्म - गायत्री में मिलाकर 'मेधा - दीक्षा' ग्रहण करे ।

तत्पश्चात् श्रीविद्या का महा - सादि-कूट ग्रहण करना चाहिए । इस कूट को 'शक्ति - कूट' कहते हैं । **'भृगु - धातृ-क्षमा - माया'**---एक - कूटाक्षरी विद्या है । शिव ऋषि, पंक्ति छन्द, 'आदि-शक्ति देवता, सकार वीज, माया शक्ति, धातृ-क्षमा कीलक । षड्-दीर्घ-भाजा कूट के अन्त में 'सर्वज्ञता-शक्त्यै, नित्य-तृप्ता-शक्त्यै, अनादि-बोधिनी-शक्त्यै, स्वतन्त्रता-शक्त्यै, नित्यमलुप्तता - शक्त्यै' तथा 'अनन्तादि - शक्त्यै' लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे । ध्यान---

कदम्ब-वन-मध्यगां, कनक-मण्डपान्त-स्थिताम् । षडम्बुरुह-वासिनीममर-सिद्ध-सौदामिनीम् ।।
विजृम्भित-जपा-रुचीं, विमल-चन्द्र-चूडा-मणीम् । त्रियम्वक-कुटुम्बिनीं, त्रिपुर-सुन्दरीमाश्रये ।।

इनका लम्बा ध्यान भी है । लेख-विस्तार-भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है ।

अब इसके बाद 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम ग्रहण कर श्रीविद्या के महा-कादि-कूट (वाग्भव-कूट) का ग्रहण होगा । ये सब बातें आगे देने की चेष्टा करूँगा ।

यहाँ एक शङ्का की बात है । श्रीविद्या की पञ्च-दशी विद्या में तो सबसे प्रथम 'वाग्भव - कूट', तब 'काम-राज-कूट', तब 'शक्ति-कूट' का क्रम बताकर अन्त में 'वाग्भव-कूट' का क्रम बताया है । इसका

तात्पर्य यह है कि कलि-काल में सब प्रकार के योगों में से 'भक्ति-योग' से उपासना करना सुगम है। फिर 'हादि' (हंस) क्रम, जो काम-राज-कूटात्मक है, दक्षिणाम्नाय से; 'सादि' (संवरौधि - क्रम का प्रतिनिधि उपाम्नाय) क्रम, जो शक्ति-कूटात्मक है, पश्चिमाम्नाय में मिलकर पश्चिमाम्नाय से तथा 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम में उत्तराम्नाय से आरम्भ होगा।

दक्षिणाम्नाय में 'भक्ति-योग' से, पश्चिमाम्नाय में 'कर्म-योग' से, उत्तराम्नाय में 'ज्ञान-योग' से उपासना होगी। अतः सबसे प्रथम दक्षिणाम्नाय में 'भक्ति-योग' से उपासना कर जब दृढ़ भक्ति की प्राप्ति होगी, तब ऊर्ध्वाम्नाय में मनोविज्ञान के साथ 'राज-योग' से बाला की उपासना कर मन में एकाग्रता तथा आसन की दृढ़ता की प्राप्ति होगी। तभी उपाम्नाय से अर्द्ध-पश्चिमाम्नाय में कायिक 'कर्म-योग' (जपार्चन, सप्तशती-पाठ, पुरश्चरणादि) से उपासना कर जब मन में त्याग और वैराग्य का भाव प्राप्त होगा, तब उत्तराम्नाय में 'ज्ञान-योग' (श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन) से उपासना कर ज्ञान - प्राप्ति होगी। तब पूर्वाम्नाय में 'मन्त्र-योग' से उपासना कर मन्त्रार्थ तथा मन्त्र-चैतन्य की दृढ़ता की प्राप्ति कर पश्चिमाम्नाय में मानसिक तथा कायिक कर्म - योग से उपासना कर मन की सन्तुष्टि तथा कर्म की पुष्टि प्राप्त होगी। इस प्रकार तीनों ही कूटों का अधिकारी बनकर 'श्रीविद्या-पञ्च-दशी' की दीक्षा होने का क्रम शङ्करजी ने बताया है।

जब 'पञ्च-दशी' की 'दीक्षा' होगी तब—कादि-कूट, हादि - कूट तथा सादि - कूट—यह त्रिकूटात्मिका विद्या बन जाएगी। एवं क्रिया पूर्ण कर 'पञ्च-दशी दीक्षा' प्राप्त करने से पुनर्जन्म न होगा।

यस्य नो पश्चिमं जन्म, यदि वा शङ्करः स्वयं। तेनैव लभ्यते विद्या, श्रीमत्पञ्च-दशाक्षरी॥

पूर्व ही कह चुका हूँ कि 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम में सबसे प्रथम उत्तराम्नाय का, तत्पश्चात् पूर्वाम्नाय का तथा अन्त में पश्चिमाम्नाय का क्रम होगा। इन सबके महा-क्रम के लिए ३-३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए ५-५ क्रम होंगे। अब यहाँ मैं ५-५ क्रम का वर्णन करता हूँ।

उत्तराम्नाय का पञ्च-क्रम

उत्तराम्नाय का पञ्च-क्रम दो प्रकार का है। एक 'कादि-क्रम', दूसरा 'तारादि-क्रम'। 'तारादि-क्रम' में **हिरण्यकशिपुपालिता शत-वक्त्रा 'गुह्य-काली - विद्या'** भी हैं, अतः यह कष्ट - साध्य क्रम होने के कारण उसे न देकर यहाँ 'कादि - क्रम' दे रहा हूँ। सबसे प्रथम **'तुम्बुरेशी गुह्य - काली'** की त्र्यक्षरी **विद्या (अंकुश, योगिनी तथा साकिनी-बीज)** है। अथर्वण ऋषि, मध्या छन्द, तुम्बुरेश्वरी गुह्य-काली देवता, योगिनी बीज, साकिनी शक्ति, अंकुश कीलक। मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'—

ध्यायेत तां त्र्याननां गुह्यां गज-वाजि - नराकृतिः, चतुर्दोर्दण्डितां पाश - बाणांकुश - धनुर्धराम्।
सप्त-सिंहासनारूढ़ां नृत्य-मानां सवोदितां, मुण्ड-माला-धरां रक्तां किंकिणि-जाल-भूषिताम्॥

द्वितीय-क्रम में **'सिद्धि-लक्ष्मी'** की नवाक्षरी विद्या **(श्रुति, त्रपा, कूर्च, चन्द्रार्द्ध - वस्त्र-युत व्योम, साकिनी, चन्द्रोर्ध्व-दन्त-युत-त्रिदश, अंकुश तथा दण्ड)**। नारद ऋषि, बृहती छन्द, सिद्धि - लक्ष्मी देवता, लज्जा बीज, कूर्च शक्ति, मूलस्य चतुर्थ-बीज कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा माया से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप **पञ्च-वक्त्रा, दश-भुजा, श्वेत-वर्णा, रुद्र-स्कन्ध-गता** है।

इनका 'यन्त्र' ऐसा है—**विन्दु-युक्त-अधो-मुख-त्रिकोण, फिर षट् - कोण, फिर अष्ट - दल, फिर द्वादश-दल, फिर त्रि-वृत्त, फिर दो चतुरस्त्र एक दूसरे को काटते हुए, अन्त में भू-पुर।**

अब 'तृतीय-क्रम' में 'सिद्धि-कराली' (भरतोपासिता गुह्य-काली) के दो भेद हैं—एक कीलिता, दूसरी अकीलिता। पूर्वोक्त मन्त्र में 'कामिनी - वीज' से पूर्व 'क्रोध - वीज' रखने से दूसरी विद्या बन जाएगी। इनमें से 'अकीलिता विद्या' का 'ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यास' इस प्रकार का है—अथर्वा ऋषि, जगती छन्द, दोला कीलक, योगिनी शक्ति।

इस विद्या में वीज न होने के कारण 'विनियोग' के न्यास में ऐसा होगा—

प्रथम दोला-कीलकाय नमो नाभौ, ततः योगिनी-शक्तये नमः पादयोः।

मूल-मन्त्र के २, ५, ३, २, २, २ अक्षरों से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप **'दशानना'** तथा **'चतुः-पञ्चाशद्-भुजा'** है। इनका ध्यान ७० श्लोकों में है। लेख-विस्तार-भय से यहाँ नहीं दे रहा हूँ।

चतुर्थ-क्रम में **'सिद्धि-करालिका'** (रामोपासिता गुह्य - काली) विद्या के भी दो भेद हैं। पूर्वोक्त मन्त्र में षष्ठ और पञ्चम वीज उलट-पलट करने से च्यवनोपासिता 'अकीलिता विद्या' बनेगी। इनका 'ध्यान', 'यन्त्र' तथा 'आवरण-पूजादि' सब 'भरतोपासिता' के समान है। ऋष्यादि-न्यास इनका ऐसा है—परमेष्ठि ऋषि, सु-प्रतिष्ठा छन्द, रामोपासिता गुह्य-काली देवता, दोला वीज, ख-युत-दोला-शक्ति, ह्स-युत-दोला कीलक।

मूल-मन्त्र के २, ५, ३, २, २, ३ वर्णों से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका यन्त्र इस प्रकार है—**नव-योन्यात्मक यन्त्र, उसके भीतरी त्रिकोण के आधार पर डमरु-यन्त्र, जिसके ऊपरी त्रिकोण के मध्य में विन्दु-युक्त अधो-मुख त्रिकोण हो, फिर नव-योन्यात्मक यन्त्र के बाहर अष्ट-दल, फिर द्वादश - दल, फिर षोडश-दल और तब भू-पुर।**

गुह्य-काली के भेद १८ हैं। उनमें से प्रत्येक के मन्त्र, ध्यान तथा यन्त्र पृथक्-पृथक हैं।

"दश-वक्त्रा षोडशार्णा चतुःपञ्चाशद्दोर्युता, सर्वासां गुह्य-कालीनां सा वै मुख्य-तमा स्मृता"—

ऐसी महा - काल की उक्ति होने के कारण इस यन्त्र को 'गुह्या - श्रीयन्त्र' अर्थात् **उत्तराम्नाय** का श्रीयन्त्र माना गया है। अतः **इस यन्त्र में निज-यन्त्राभाव में गुह्य-काली की १८ भेद-विद्याओं की सपर्या हो सकती है।**

अब पञ्चम-वक्त्र में **'काम-कला गुह्य-काली'** (इनको काम-कला काली भी कहते हैं) की अष्टादशाक्षरी विद्या का विनियोग इस प्रकार है—

महा-काल ऋषि, वृहती छन्द, काम-कला-काली देवता, काम-वीज, क्रोध शक्ति। कीलक नहीं है। पञ्च-वीज-मध्ये १-१ वीज तथा नाम के अन्त में १-१ कर प्रत्येक नामाक्षर में नाद-विन्दु लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे।

इनका 'ध्यान'—**'पक्व-जम्बू-फल-प्रभा, षोडश-भुजा, अति-भीमां, संहार-भैरवेनैव, सार्धं सम्भोग-मिच्छती' इत्यादि २८ श्लोक हैं।**

षोडशार्णा यथा मुख्या सर्व-श्री-चक्र-मध्यगा। तथेयं नव-कालीषु सदा मुख्य-तमा स्मृता॥

इन काम-कला-काली' के विषय में महा-काल का ऐसा वचन होने के कारण नव-काली-मध्ये **'काम-कला-काली'** मुख्य मानी गई हैं, परन्तु यह विद्या प्रकृति-रूपा नहीं है, अन्य कालियों जैसी विकृति (काली-कल्प से उपासिता) है। केवल पूर्वोक्त 'दश-वक्त्रा गुह्य-काली' ही प्रकृति - रूपा (श्रीकल्प से उपासिता) है। 'महा-काल संहिता' में महा-काल की उक्ति है—

दश-वक्त्रातु या प्रोक्ता, गुह्य-काली मया तव। प्रकृतिः सा परि-ज्ञेया कालीनां जगदम्बिका॥

अन्या विकृतयः प्रोक्ताः कार्य-कारण-भेदतः ।

फिर 'वडवानल तन्त्र' में भगवान् शङ्कर की उक्ति है--

महा-त्रिपुर-सुन्दर्याश्चण्ड-योगेश्वरी परा । न तयोर्विद्यते भेदो, भेदकृन्नरकं व्रजेत् ।।

'काम-कला-काली' का 'यन्त्र' इस प्रकार का है--'क्लीं'-युक्त अधो-मुख त्रि-कोण, फिर त्रि-कोण, फिर तीसरा त्रि-कोण, जिसके ऊपर के दोनों कोणों में क्रमशः 'हूं' और 'ह्रीं' तथा अधो-कोण में 'क्रीं' अङ्कित है । फिर अष्ट-कोण, तब भू-पुर और भू-पुर के बाहर पुनः अष्ट-कोण । इस 'यन्त्र' को 'उत्तराम्नाय काम-कला यन्त्र' कहते हैं ।

उत्तराम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

इसके बाद **कौलाभिषेक** (लघु-पूर्णाभिषेक), **पादुका दीक्षा** तथा उत्तराम्नाय की **सर्वाधिकार-दीक्षा** ग्रहण करे इस आम्नाय में अपनी-अपनी गुरु-परम्परा के भेद से दिव्यौघादि के नाम पृथक् हो सकते हैं, परन्तु मैं जो जानता हूँ, वह निम्न प्रकार है-

दिव्यौघ—**उड्डीशानन्द-नाथ, कुलेशानन्द-नाथ तथा पूर्णेशानन्द-नाथ ।**

सिद्धौघ—**कामेश्वरानन्द-नाथ, श्रीकण्ठानन्द-नाथ तथा शङ्करानन्द-नाथ ।**

मानवौघ—**अनन्तानन्द-नाथ, पिङ्गलानन्द-नाथ तथा नादानन्द-नाथ ।**

'सर्वाधिकार-विद्या' का विनियोग इस प्रकार है—ॐ **अस्य श्रीगुह्य-काली निर्वाण-मन्त्रस्य** 'श्री-प्रासाद' मन्त्र का उच्चारण कर) **सदा-शिव ऋषिः,** (दोला उच्चारण कर) **बृहती छन्दः, श्रीनिर्वाण-गुह्य-काली देवता, वस्त्र-रेफार्द्ध-चन्द्र-युत-फकार बीजं, वामाक्षी-रेफ-विन्दु-नाद-युत-फकार शक्तिः, दोला कीलकं, योग-सिद्धयर्थे विनियोगः ।**

'फ्रः अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर 'षड्-दीर्घ-भाजा दोला-बीज' से 'कर-षडङ्ग - न्यास' करे । इस प्रकार 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के पश्चात् 'काम-कला-काली' की 'अष्टादशाक्षरी विद्या' को भाग - त्रय में विभाजित कर 'ब्रह्म-गायत्री' में मिलाकर उत्तराम्नाय **'मेधा-दीक्षा'** ग्रहण करे ।

उत्तराम्नाय की सन्ध्या

'उत्तराम्याय' की **प्रातः - सन्ध्या** में 'सिद्धि - लक्ष्मी' की पूर्वोक्त नवाक्षरी विद्या का जप कर, 'काम-कला काली' का 'सृष्टि-क्रम' से जप करे । इस अवस्था में इनका रूप पूर्वोक्त जैसा ही है, केवल वर्ण--**'उद्यद्-वद्-घनाघनाश्लिष्यज्जपा-कुसुम-सन्निभा'** है ।

'मध्याह्न-सन्ध्या' में भरतोपासिता ' दश-वक्त्रा गुह्य-काली' की पूर्वोक्त षोडशाक्षरी विद्या का जपकर, 'काम-कला काली' का साङ्गोपाङ्ग जप करे । इनका रूप पूर्वोक्त ही है । केवल वर्ण--- **'पक्व-जम्बू-फल-प्रभा'** है ।

'सायं-सन्ध्या' में रामोपासिता 'दश-वक्त्रा गुह्य-काली' की सप्त-दशाक्षरी विद्या का 'संहार-क्रम' से जप करे । इनका रूप पूर्वोक्त ही है, वर्ण-- **'अञ्जनाद्रि-प्रभा-श्यामा'** है ।

'तुरीया-सन्ध्या' में 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के मन्त्र का जप करे । तब 'मेधा - दीक्षा' के मन्त्र का जप करे ।

तीन क्रम के लिए 'गुह्या' के १८ भेदों में से कोई एक मन्त्र अपनी गुरु-परम्परा के अनुसार ग्रहण करना चाहिए । तब पूर्वोक्त 'सिद्धि-लक्ष्मी' की नवाक्षरी विद्या का ग्रहण होगा । यहाँ यह उल्लेख्य है कि

जिनकी परम्परा में एकानना, त्र्यानना और पञ्चानना की प्रथा है, उस क्रम में पहले 'गुह्या', तब 'सिद्धि-लक्ष्मी' होगी, परन्तु जिनकी परम्परा में षडानना, सप्तानना तथा नवानना की प्रथा है, उस क्रम में पहले 'सिद्धि-लक्ष्मी', तब 'गुह्या' होगी।

तदनन्तर भरतोपासिता पूर्वोक्त 'दशानना गुह्य-काली' की दीक्षा होकर ३ क्रम समाप्त होंगे। १० से अधिक 'वक्त्रा' ३ क्रम में नहीं हैं। **'महा-क्रम'** के लिए पूर्वोक्त ३ क्रम और **'पूर्ण - क्रम'** के लिए पूर्वोक्त ६ क्रम ग्रहण कर 'ज्ञान-योग' से उपासना कर ज्ञान प्राप्त करे। अष्ट-पाश की भावना हटाकर 'पूर्वाम्नाय' में आरूढ़ होना चाहिए।

पूर्वाम्नाय के पंच-क्रम

'पूर्वाम्नाय' के **'पञ्च-क्रम'** इस प्रकार हैं—**प्रथम-क्रम** में 'उन्मनी' की त्र्यक्षरी विद्या—**त्रपा, तार तथा लज्जा—ह्रींॐह्रीं।** शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, उन्मनी देवता, ह्-कार वीज, ईकार शक्ति, **प्रणव** कीलक। प्रत्येक मन्त्राक्षर की द्विरावृत्ति से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप—**लाल-वर्ण तथा पाशांकुश-वरा भय-करा** है।

'द्वितीय-क्रम' में 'पूर्णेश्वरी' की षडक्षरी विद्या—**तार, माया, रमा, काम तथा नमः—ॐह्रींश्रीं क्लीं नमः**। ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पूर्णेश्वरी देवता, माया वीज, रमा शक्ति, काम कीलक। इनका रूप—**इन्द्र-नील-सम-वर्णा दश-भुजा, नागालङ्कार-भूषिता है।**

'तृतीय-क्रम' में 'भुवना' की माया-वीजात्मक एकाक्षरी विद्या—**ह्रीं**। शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, भुवना देवता, ह्-कार वीज, ईकार शक्ति, रेफ कीलक। इनका रूप—**उद्यद्-दिवाकर - निभा, तुङ्ग-कुचा, पाशांकुश-वराभय-करा** है।

यहाँ एक शङ्का की बात है। 'माया-वीज' तो पूर्व के कितने ही मन्त्रों के अन्तर्गत है ही। फिर यहाँ उसी अकेले वीज की दीक्षा कैसी? इस शङ्का का समाधान यह है कि जब यह 'माया-वीज' अकेले ही उच्चारित होगा, तब इसका तत्त्व ही अलग होगा और इसका प्रणव-जैसा गूढ़ार्थ होगा। अतः इस वीज को 'देवी-प्रणव' मानते हैं।

'चतुर्थ - क्रम' में 'भुवनेश्वरी' की त्र्यक्षरी विद्या—**वाग्-वीज, माया तथा वाणी—ऐं ह्रींश्रीं**। शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, माया वीज, वाणी शक्ति। कीलक नहीं है। षड्-दीर्घ - भाजा माया—वाणी (**ह्रां श्रां, ह्रीं श्रीं** इत्यादि) से पुटित कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप—**श्यामाङ्गी, वर-रक्तोत्पल-रत्न-चषकाभय-करा** है।

'पञ्चम-क्रम' में 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या—**वाग्-वीज, माया, रमा, वाणी तथा लज्जा ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं**। इनको 'भुवन-सुन्दरी' भी कहते हैं। सदाशिव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, महा-भुवनेश्वरी देवता, लज्जा वीज, वाणी शक्ति, रमा कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा माया-वीज (ह्रां ह्रीं इत्यादि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप सृष्टि-क्रम में इस प्रकार है—

भजे भुवन-सुन्दरीमरुण-नील-शुभ्रानन-त्रयां। त्रि-नयनाम्बुजां धृत - वर - त्रिशूलांकुशाम्॥
सु-पाश-डमरु-करामभयदां सरोज-स्थितां। स्मितां शशि-धरां परामरुण-वस्त्र-भूषोज्ज्वलाम्॥

'स्थिति-क्रम' में इनका रूप (ध्यान) इस प्रकार है—

ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां कृत-जनि-जननीं योगिनीं योग-योनीम् । देवानां जीवनायोज्ज्वलित जय-पर-ज्योतिरुग्राङ्ग-धात्रीम् ।। शङ्खं चक्रं च बाणं धनुरपि दधतीं दोश्चतुष्काम्बु-जातैः । मायामाद्यां विशिष्टां भव-भव-भुवनां भू-भुवाभार-भूमीम् ।।

'संहार-क्रम' में इनका रूप (ध्यान) इस प्रकार है—

शूलासि-शक्ति-वरदाभय-पौण्ड्र-चाप-पुष्पेषु-पात्र-डमरुञ्च तथाऽक्ष-सूत्रम् ।
बिभ्रत्-कराम्बुज तलैश्च शवाधिरूढां । श्यामां भजे भगवतीं भव-भीति-हन्त्रीम् ।।

'पूर्वाम्नाय-क्रम' की इन सब पूर्वोक्त शक्तियों के 'यन्त्र' एक ही जैसे हैं । यथा—षट्-कोण, फिर अष्ट-दल, तब षोडश-दल और उसके बाद चतुर्द्वारात्मक भू-पुर ।

इस 'यन्त्र' को 'पूर्वाम्नाय श्रीयन्त्र' भी कहते हैं । 'महा-क्रम' के लिए उन्मनी, पूर्णेश्वरी तथा भुवनेश्वरी । 'पूर्ण-क्रम' के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम ग्रहण करने चाहिए । अब इसके बाद 'कौलाभिषेक' (पूर्णाभिषेक) ग्रहणकर 'पादुका-दीक्षा' ग्रहण करे । इस आम्नाय में भी अपनी-अपनी गुरु-परम्परा-भेदानुसार दिव्यौघादि के नाम पृथक्-पृथक् होते हैं, परन्तु जो मैं जानता हूँ, इस प्रकार हैं—

दिव्यौघ—१ पर - प्रकाशानन्द - नाथ, २ परमेशानन्द - नाथ, ३ पर-शिवानन्द-नाथ, ४ कामेश्वर्यम्बा, ५ मोक्षानन्द-नाथ, ६ कामानन्द-नाथ तथा ७ अमृतानन्द-नाथ ।

पूर्वाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

सिद्धौघ—१ ईशानानन्द-नाथ, २ तत्पुरुषानन्द-नाथ, ३ अघोरानन्द-नाथ, ४ वामदेवानन्द-नाथ तथा ५ सद्योजातानन्द-नाथ

मानवौघ—१ पञ्चोत्तरानन्द-नाथ, २ परमानन्द-नाथ, ३ सर्वज्ञानन्द-नाथ, ४ सर्वानन्द - नाथ, ५ सिद्धानन्द-नाथ, ६ गोविन्दानन्द-नाथ तथा ७ शङ्करानन्द-नाथ ।

अब पूर्वाम्नाय की 'सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण करे ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-महा - निर्वाण - मन्त्रस्य शक्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्री-निर्वाण - भुवनेश्वरी देवता, ह - कार वीजं, ईकार शक्तिः, रेफः कीलकम्, चतुर्विध - पुरुषार्थ - सिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।

'ह्रः अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर उसी वीज के षड्-दीर्घ-भाजा से 'कर-षडङ्ग - न्यास' करे । तब भुवनेश्वरी की पञ्चाक्षरी विद्या के एक, दो तथा दो वीजों से पूर्व-वत् 'ब्रह्म-गायत्री' में मिलाकर 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करनी चाहिए ।

पूर्वाम्नाय की सन्ध्या

अब पूर्वाम्नाय की सन्ध्या का वर्णन करता हूँ । प्रातः-काल पूर्वोक्त 'उन्मनी' की त्र्यक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या का 'सृष्टि-क्रम' से जप करे ।

'मध्याह्न-काल' में 'पूर्णेश्वरी' की पूर्वोक्त षडक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या का 'स्थिति-क्रम' से जप करे ।

'सायं-काल' में 'भुवनेश्वरी' की पूर्वोक्त त्र्यक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी-विद्या का 'संहार-क्रम' से जप करे ।

'निशा-काल' में पूर्वाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' का जप करे । तब मेधा-दीक्षा का जप करे ।

इस पूर्वाम्नाय में 'मन्त्र-योग' से उपासना कर मन्त्र-ज्ञान को सिद्ध कर पश्चिमाम्नाय में आरूढ़ होना चाहिए। 'मन्त्र-योग' का मतलब केवल जप ही नहीं है, अन्य प्रकार के योगाभ्यास-क्रम भी हैं, जो गुरु-कृपा से सीख लेने चाहिए।

पश्चिमाम्नाय (कुब्जिका-विद्या) के पंच-क्रम

'पश्चिमाम्नाय' की नायिका 'कुब्जिका' हैं। इनकी उपासना के दो भेद हैं—१ नवात्म-मत, २ शिखा-स्वच्छन्द-मत। 'नवात्म-मत' में विद्याओं के विनियोग और ऋष्यादि-न्यास नहीं होते, केवल 'सङ्कल्प' से ही कर्म का आरम्भ हो जाता है। मैं 'शिखा-स्वच्छन्द-मतावलम्बी' हूँ, इस मत के अनुसार 'पश्चिमाम्नाय' के 'पञ्च-क्रम' इस प्रकार हैं—सबसे प्रथम **'समया-कुब्जिका'** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—**नमो भगवत्यै श्रीकुब्जिकायै ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं ङञणनमे अघोर-मुखि छ्रां छ्रीं किणि किणि विच्चे।**

उक्त ३२ अक्षरवाले मन्त्र में **'श्रीकुब्जिकायै'** के स्थान में **'कुब्जिकायै'** करे और **प्रारम्भ में 'ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं मम कुब्जिके जीवितं'** यह ११ अक्षरोंवाला 'कूट' जोड़े, तो ४२ अक्षरोंवाला मन्त्र बन जाता है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-बृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्दांसि, कुब्जिकेश्वरी देवता, विद्यायाः सप्तम-कूटं बीजं, त्रयोदश-कूटं शक्तिः, षड्-विंशद्-बीजं कीलकम्।

विद्याऽऽद्या के विलोमानुलोम-पद का विलोम उच्चारण कर करतल-पृष्ठ-कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ तक, फिर अनुलोम-उच्चारण से अंगुष्ठ से कनिष्ठिका-करतल-पृष्ठ तक 'कर-न्यास' करे। 'कर-न्यास' के पहले वाणी-बीज का उच्चारण कर **'किणि-किणि विच्चे कोङ्कणयह्र'** इस मन्त्र से कर-शुद्धि करे। इस प्रकार 'कर-न्यास' और 'षडङ्ग-न्यास' करे। 'षडङ्ग-न्यास' कुब्जिका-विद्या के सभी द्वाविंशाक्षर मन्त्रों का एक ही है, जो निम्न प्रकार है—

नमो भगवत्यै हृत्-कमलायै हृदयाय, श्री कुब्जिकायै कुल-दीपायै शिरसे, ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं बर्बर-शिखायै, ङञणनमे अघोर-मुखि बहु-रूपायै कवचाय, छ्रां छ्रीं कुलजमहं-तारिके नेत्र-त्रयाय, किणि किणि विच्चे कवचोर्वाणायै अस्त्राय।

इस प्रकार अनुलोम-विलोम पञ्च-तार से पुटित कर विलोम से करे। न्यास में भी 'श्री' के बदले पूर्वोक्त कूट हो। यह विद्या अतीव गोप्या, रहस्य-मयी, दुष्प्राप्या और क्षिप्र-फलदा है।

कुब्जिका विद्या के द्वा-त्रिंशद्-भेदों के ध्यान भी समान हैं। **उनका रूप आकाश-वर्ण-वाले अष्टादश-भुज कुब्जिकेश्वर के वामाङ्क में अरुणा, वराभयकरा, एकानना कुब्जिका विराजमाना हैं।**

द्वितीय-क्रम में **'घोर-कुब्जिका'** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या (**'समया-कुब्जिका'**-वत्, केवल **'ङञणनमे'** पद के स्थान पर **'घोरे अघोरे'** पद होगा)। 'ऋष्यादि-न्यास' व 'कर-शुद्धि' 'समया-कुब्जिका'-वत्। 'कर-न्यास घोर-कुब्जिका मन्त्र से करे, शेष पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका-वत्'। 'षडङ्ग-न्यास' और 'ध्यान' भी पूर्वोक्त **कुब्जिकेश्वराङ्क-स्थितैकानना** कुब्जिका के समान।

तृतीय-क्रम में 'वीर-कुब्जिका' की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या (समया-कुब्जिका-वत् केवल **'छ्रां छ्रीं'** के बदले **'छ्रां छ्रीं'**, **'ए'**-कार-युत कूट के स्थान में 'ए'-कार तथा 'आ' कार, फिर **'कुब्जिकायै' के स्थान में 'कुब्जिके'** होगा)।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषि, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-बृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्द, वीर-कुब्जिका देवता, मन्त्र का सप्तम-कूट वीज, त्रयोदश-कूट शक्ति, षड्-विंशद् वीज कीलक।

'कर-शुद्धि' पूर्वोक्त-वत् करे। 'कर-न्यास' 'वीर-कब्जिका' मन्त्र से करे। शेष, पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका' के समान। 'ध्यान'—'नीलाति-श्वेत-रक्ताभ' इत्यादि। अर्थात् इनका रूप नील, श्वेत तथा रक्त-वर्ण का त्र्याननना और षड्-भुजा है।

अब 'चतुर्थ-क्रम' में वज्र-कुब्जिका की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—ऐं सौः सः हां क्षोभ-कारिणि त्रीं स्त्रीं ह्लीं कामाङ्ग-द्राविणि ह्स्ख्फ्रें त्रैलोक्याकर्षिणि ऐं वज्र-कुब्जिनि ऐं।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-बृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्दांसि, श्रीमद्-वज्र-कुब्जिका देवता, ऐं वीजं, सौः शक्तिः, स्त्रीं कीलकम्।

इनका षडङ्ग-न्यास भिन्नहै। 'ऐं कोङ्कणाय विच्चे किणि किणि ह्लः' मन्त्र से कर-शुद्धि करे। तब विद्या के विलोमानुलोम पद के अनुलोम उच्चारण को विलोम-पद द्वारा कर करतल-पृष्ठ-कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ तक, फिर अनुलोम-पद द्वारा अंगुष्ठ से आरम्भ कर कनिष्ठिका-करतल-पृष्ठ तक कर-न्यास करे। फिर विलोमानुपद - मूल के अनुलोम-पद से हृदयादि-षडङ्ग-न्यास कर पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका' का षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान 'पञ्च-वक्त्रा, दश-भुजा, परापर-कुल-रूपा' है।

पञ्चम क्रम में 'अघोर-कुब्जिका' की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—ह्लौं रुद्र-रूपे ह्लः लूं सः फ्रें सर्वत्र सर्व-सर्वे हं क्षं हूं घोर-घोर-तरे ह्रीं घोरे ऐं ह्रीं घोरे।

अघोर ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीमदघोर-कुब्जिका देवता, परा वीजं, सम्वर्त्तेन्दु-लकुली शक्तिः, दोग्ध्री कीलकम्।

'ह्लः अस्त्राय फट्' मन्त्र से कर-शुद्धि करे। पूर्वोक्त वज्र-कुब्जिका के ढङ्ग से मूल-मन्त्र का कर-षडङ्ग-न्यास कर पूर्वोक्त समया-कुब्जिका का षडङ्ग-न्यास करे। इनका रूप षड्-वक्त्रा है।

कुब्जिका-विद्या का अर्चन-क्रम

कुब्जिका विद्या के पञ्च क्रम उक्त प्रकार हैं, परन्तु अर्चनादि में इनका क्रम है—१ अघोर-कुब्जिका, २ वज्र-कुब्जिका, ३ समया-कुब्जिका, ४ घोर-कुब्जिका तथा ५ वीर-कुब्जिका। इस विद्या को 'कुब्जिका-पञ्च-रत्न-विद्या' कहते हैं। नेपाल में इन्हें 'अघोर-वज्र-वत्तिशी-त्रयं' सङ्केत से पुकारते हैं। जो लोग इनका त्रि-क्रम ग्रहण करते हैं, उनका—१ समया-कुब्जिका, २ घोर - कुब्जिका तत्पश्चात् ३ वीर-कुब्जिका। इस प्रकार 'त्रि-रत्न-विद्या' का क्रम होगा। नेपाल में इन्हें 'वत्तिशी-त्रयं' सङ्केत से पुकारते हैं।

सभी शक्तियों के दक्ष ओर उनके भैरव की पूजा होती है, परन्तु 'तारा-विद्या' के शिर की जटा में और 'कुब्जिका-विद्या' के वाम ओर भैरव की सपर्या होती है।

पश्चिमाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

इसके बाद 'कौलाभिषेक' (लघु-पूर्णाभिषेक), पादुका-दीक्षा तथा 'पश्चिमाम्नाय की सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण करे। इस आम्नाय के दिव्यौघादि गुरुओं के नाम इस प्रकार हैं—

दिव्यौघ—अघोरानन्द-नाथ, घोरानन्द-नाथ तथा घोर-घोर-तरानन्द-नाथ।

सिद्धौघ—तत्परानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ तथा रुद्रानन्द-नाथ।

मानवौघ--ह्लांकारानन्द-नाथ, ह्लींकारानन्द-नाथ तथा ह्लूंकारानन्द-नाथ।

अन्य आम्नायों में 'गुरु - चतुष्टय' का क्रम है--१ गुरु, २ परम गुरु, ३ परापर गुरु तथा ४ परमेष्ठि गुरु, परन्तु 'कुब्जिका' के पश्चिमाम्नाय में है—१ परमेष्ठि गुरु, २ परापर गुरु ३ परम गुरु तथा ४ गुरु।

पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार-विद्या **'निर्वाण-कुब्जिका'** के 'विनियोग' तथा 'कर-षडङ्ग-न्यास' इस प्रकार हैं—

ॐ पञ्च-तारान्ते अस्य श्रीनिर्वाण-श्रीकण्ठ-नाथ-महा-मन्त्रस्य भैरवाग्नि ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीनिर्वाण-कुब्जिका देवता, ह्लां बीजं, ह्लीं शक्तिः, ऐं कीलकं, राज्य-मोक्ष-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

'ह्लः अस्त्राय फट्' इति कर-शुद्धिः। षड्-दीर्घ-भाजा माया (**'ह्लां ह्लीं'** आदि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। यहाँ 'कर-न्यास' अंगुष्ठ से ही होगा।

स्नातक ब्रह्मचारी और यति लोग तथा ऊर्ध्वाम्नाय का क्रम ग्रहण न कर केवल पश्चिमाम्नाय में ही रहनेवाले साधक **'अघोर-कुब्जिका'** की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या' को तीन भागों में विभाजित कर पूर्व-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर पश्चिमाम्नाय की मेधा-दीक्षा ग्रहण करें। त्रिकाल-सन्ध्या में सृष्टि, स्थिति तथा संहार-क्रम से **'अघोर-कुब्जिका'** का जप करें। इनके मेधा-मन्त्र का ही जप करें।

ऊर्ध्वाम्नाय-क्रम ग्रहण करनेवाले गृहस्थ लोग 'वज्र - कुब्जिका' की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी' विद्या को तीन भागों में विभाजित कर पूर्व-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर पश्चिमाम्नाय की 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करें। सन्ध्या भी इन्हीं के क्रम से करें।

कुब्जिका विद्या का पश्चिमाम्नाय का 'श्री-यन्त्र' इस प्रकार है—**विन्दु-युक्त अधो - मुख त्रिकोण, षट्-कोण, अष्ट-दल, अष्ट-कोण, अन्त में त्रिरेखात्मक भूपुर।**

'कुब्जिका-विद्या' और **'उग्र-चण्ड-विद्या'** के प्रत्येक मन्त्र के जप-पूजादि के प्रयोग में प्रति मन्त्र को 'पञ्च-तार' द्वारा आदि में अनुलोम और अन्त में विलोम-क्रम से पुटित करना चाहिए।

पश्चिमाम्नाय की सन्ध्या

गृहस्थों के लिए 'सन्ध्या-विधि' का वर्णन करता हूँ।

प्रातः-काल 'समया-कुब्जिका' का पूर्वोक्त न्यास कर ध्यान करे—

तरुण-रवि-निभास्यां, सिंह-पृष्ठोपविष्टां। कुच-भर-नमिताङ्गीं, सर्व-भूषाभिरामाम्॥

अभय-वरद-हस्तामेक-वक्त्रां त्रिनेत्रां। मद-मुदित-मुखाब्जां, कुब्जिकां चिन्तयामि॥

इस सन्ध्या की अवस्था में भैरवाङ्क-स्थित रूप 'कुब्जिका' के सभी मन्त्रों में प्रयुक्त होता है। यह रूप 'वज्र-कुब्जिका' का सृष्टि-रूप माना जाता है।

ध्यान कर 'समया-कुब्जिका की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी'-विद्या का जपकर सृष्टि-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका' का जप करे। सृष्टि-क्रम में इनका ध्यान **'वृषभे संस्थितं देवं'** इत्यादि है।

मध्याह्न-काल में 'वीर-कुब्जिका' विद्या का पूर्वोक्त स्थिति-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका विद्या' का जप करे। **स्थिति-क्रम में इनका ध्यान 'परापर-कला-रूपा'** इत्यादि तथा कुब्जिकेश्वर का रूप **'पञ्च - वक्त्रं दश-भुजं'** इत्यादि है। भैरव के वामाङ्क-स्थिता 'कुब्जिका' का ध्यान करे।

सायं-काल 'अघोर-कुब्जिका विद्या' का जप कर संहार-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका' विद्या का जप करे। **संहार-क्रम में इनका ध्यान है—**

दोर्भिः खट्वाङ्ग-विद्या-मुशर-जप-वटी-पाण्डु-जन्यांश्च दक्षैः ।
खड्गादर्श-त्रिशूलांकुश-मणि-गुटिका-चाप-बाणैर्दधानाम् ।।
नीलाङ्गीं षट्-प्रकारां रस-मुख-कमलामण्ट-नागेन्द्र-भूषाम् ।
वन्दे कुब्जिकाम्बां मद-मुदित-मुखीं वज्र-सिंहासनस्थाम् ।।

निशा-काल में पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार-दीक्षा का साङ्गोपाङ्ग जप करे। तब मेधा-दीक्षा का जप करे। इनकी मेधा-दीक्षा के साथ ही 'चतुरन्वय शाम्भव' की दीक्षा होगी। 'चतुरन्वय' का अर्थ है चार चक्रों की शाम्भव विद्या का समन्वय करना। इस कर्म में विशुद्धि - चक्र में 'ि ञ्चेश्वर शाम्भव' अनाहत-चक्र में 'हंसेश्वर शाम्भव', स्वाधिष्ठान-चक्र में 'द्वीपेश्वर शाम्भव' न होकर 'सम्वर्त्तेश्वर शाम्भव' तथा मूलाधार-चक्र में 'नवात्मेश्वर शाम्भव' —ये ४ शाम्भव होंगे।

पश्चिमाम्नाय में 'कर्म-योग' से उपासना होगी। अतः इस विद्या में कम-से-कम दो - तीन मास गुरु के साथ रहकर बहिर्याग की हस्त-क्रिया तथा अन्तर्याग की कुण्डली-क्रिया सीखकर उपासना करनी चाहिए। यह आम्नाय बड़ा कठिन है। पग-पग में गुरु की आवश्यकता पड़ेगी। यह विद्या प्रत्यक्ष शीघ्र-फलदा और ऐहिक फल देनेवाली है, परन्तु कर्म में तनिक मात्र त्रुटि होगी, तो शीघ्र ही विघ्न पड़ जायगा।

पश्चिमाम्नाय (श्रीविद्या महा-कादि-कूट) के पंच-क्रम

अब श्रीविद्या का 'महा-कादि-कूट' ग्रहण करना चाहिए। इस कूट को 'वाक्-कूट' एवं 'कूटाक्षरी विद्या' कहते हैं। 'मन्त्रोद्धार' है–'ब्रह्म-क्षितीश-गोविन्द-धरा-माया' अर्थात् 'कएईलह्रीं'। ऋष्यादि निम्न प्रकार हैं—

ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, वागधीश्वरी देवता, क बीजं, ह्रीं शक्तिः, ए-ई कीलकं।

षड्-दीर्घ-भाजा इस कूट के अन्त में 'ब्रह्म-वाग्-रूपिण्यै, रुद्र-वाग्-रूपिण्यै, शिव - वाग् - रूपिण्यै' तथा 'अखिल-वाग्-रूपिण्यै' लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान—

शुक्लां स्वच्छ-विलेप-माल्य-वसनां शीतांशु-खण्डोज्ज्वलाम्,
व्याख्यामक्ष-गुण सुधाढ्य-कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः ।
बिभ्राणां कमलासनां कुच-नतां वाग्-देवतां सस्मिताम्,
वन्दे वाग्-विभव-प्रदां त्रिनयनां सौभाग्य-सम्पत्करीम् ।

इसके बाद 'श्रीविद्या पञ्च-दशी' (पूर्वोक्त कादि-वाग्-भव कूट : 'कएईलह्रीं, हादि - काम - राज कूट : 'हसकहलह्रीं', तत् - पश्चात् सादि - शक्ति कूट : 'सकलह्रीं') विद्या ग्रहण करे। फिर पादुका-दीक्षा चतुष्कूटा विद्या (पूर्वोक्त 'पञ्च-दशी विद्या' के अन्त में 'स्वर-भग-बिन्दुमाली लल-शिव-जीव-स्मर-शम्भु-धरा-भृगु काम-क्षमा-माया'—यह त्रयोदशाक्षरात्मक कूट : 'क ए ई ल ह ल क ह ल स क ल ह्रीं' लगाना होगा) ग्रहण कर कौलाभिषेक (लघु-पूर्णाभिषेक) ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर पञ्च-दशी के तीन कूट पूर्वोक्त-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करे।

श्रीविद्या में तीन मत हैं—१ हयग्रीव (इसमें पाशव कल्प से उपासना होती है), २ आनन्द-भैरव और ३ दक्षिणा-मूर्ति (केवल वीर - दिव्य - कल्प से)। दूसरा मत प्रायः लोक - प्रचलित है, परन्तु तीसरा मत सर्वोत्तम और अतीव गोप्य है। इसमें 'पश्चिमाम्नाय' की हस्त-क्रिया आवश्यक है।

अब तीनों ही मतों की 'पञ्च-दशी-विद्या' के ऋष्यादि-न्यास का वर्णन करता हूँ। 'हयग्रीव-मत' में—हयग्रीव ऋषिः गायत्री छन्दः, श्रीललिता-त्रिपुर-सुन्दरी देवता, वाक् - कूटं बीजं, शक्ति - कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'आनन्द भैरव-मत' में—आनन्द - भैरव ऋषिः (अथवा परम्परा-भेद से दक्षिणा-मूर्ति ऋषिः), गायत्री छन्दः (अथवा परम्परा-भेद से पंक्तिश्छन्दः), श्रीमन्महा-त्रिपुर-सुन्दरी पञ्च-दशी देवता, वाक्-कूटं बीजं, शक्ति-कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'दक्षिणा-मूर्ति-मत' में—दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीमन्महा-त्रिपुर-सुन्दरी पञ्चदशी देवता, वाक्-कूटं बीजं, शक्ति-कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'कर-न्यास' तीनों ही मत के एक ही हैं। 'ऐं क्लीं सौः'—इन तीन बीजों की द्विरावृत्ति कर मध्य-माऽनामिका-कनिष्ठिकांगुष्ठ-तर्जनी-करतल-पृष्ठ में कर-शुद्धि कर पूर्वोक्त तीन कूटों की द्विरावृत्ति कर कर-षडङ्ग-न्यास करे। चतुष्कूटा में ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यास—सब पूर्व-वत् हैं, केवल नाम में 'चतुष्कूटा महा-त्रिपुर-सुन्दरी देवता' और न्यास के पश्चात् चतुर्थ-कूट से व्यापक (सर्वाङ्गे) होगा।

'पञ्चदशी विद्या' का भी पूर्वोक्त-वत् प्रातः-काल में सृष्टि-क्रम से, मध्याह्न-काल में स्थिति-क्रम से, सायं-काल में संहार-क्रम से और निशा-काल में 'चतुष्कूटा' का जप कर 'मेधा-दीक्षा' का जप करे। इनका रूप सृष्टि, स्थिति और संहार-क्रम से तीन प्रकार का है। यथा—

सृष्टि-क्रम में—विन्दु-त्रिकोण-वसु-कोण-दशार-युग्मं, मन्वस्र-नाग-दल-सङ्गित-षोडशारम्। वृत्त-त्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च, मध्य-स्थितां भगवतीं त्रिपुरां नमामि॥ सूर्येन्द्वग्नि-मयैक-पीठ-निलयां बालार्क-बिम्बारुणाम्, त्र्यक्षां चन्द्र-कलावतंस-मुकुटां पीन-स्तनीं सुन्दरीम्। पाशं चांकुशमिक्षु-चाप-विधृतां पुष्पेषु-हस्तां पराम्, नाना-भरण-भूषितातिं-सुकुमाराङ्गीं भजे वैन्दवे॥

स्थिति-क्रम में—भू-बिम्ब-चक्रमथ षोडश चाष्ट-विन्दुरग्न्यष्ट-संयुत-मह-त्रितयं दशारम्। वेदार-संयुत-दशास्पद-मध्य-रूपां, त्वां वै महा-त्रिपुर-सुन्दरीं नौम्यहं श्रि॥ ऐङ्कारासन-गर्भितानल-शिखा-सौक्लीं कलां बिभ्रतीम्, सौवर्णाम्बर-धारिणीं वर-सुधां धौतां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम्। वन्दे पुस्तक-पाशमंकुश-धरां स्रग्-भूषितामुज्ज्वलाम्, त्वां गौरीं त्रिपुरां परात्पर-कलां श्रीचक्र-सञ्चारिणीम्।

संहार-क्रम में—भू-वेश्मग-त्रिवृत्त-षोडश चाष्ट-शक्र- दिग्-युग्म-वस्वनल-कोणग-विन्दु-मध्ये। सिंहासनोपरि-गतारक-पीठ-मध्ये, प्रोत्फुल्ल-पद्म-नयनां त्रिपुरां भजेऽहम्। स्मरे प्रथम-पुष्पिणीं रुधिर-बिन्दु-नीलाम्बराम्, गृहीत-मधु-पात्रिकां स्मर-विघूर्ण-नेत्राञ्चलाम्, घन-स्तन-भरोन्नतां गलित-चूलिकां श्यामलां, त्रिलोचन-कुटुम्बिनीं त्रिपुर-सुन्दरीमाश्रये।

इनकी 'मेधा - दीक्षा' के साथ ही 'परमेश्वर - शाम्भव' को ग्रहण करना चाहिए, जो आज्ञा-चक्र में हैं।

विनियोग—शब्द-ब्रह्म ऋषिः, गायत्र्यादि नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाणी वीजं।

व्योम-भृगु-रेफ-युत - फकार (ह्स्फ) के षड् - दीर्घ-भाजा (ह्स्फां, ह्स्फीं आदि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे।

ध्यान—प्रकाश-मध्ये स्थिति-चित्-स्वरूपां, वराभयेवं दधतीं त्रिनेत्राम्, सिन्दूर-वर्णामति-कोम-लाङ्गीं, माया-मयीं नमामि।

'पञ्च-दशी' के मन्त्रान्तर के भेद बहुत हैं। उनमें से पूर्वोक्त 'कादि - पञ्च - दशी' सर्वोत्तम है। 'हादि-पञ्च-दशा' की 'लोपामुद्रा-पञ्च-दशी' भी कहते हैं। फिर 'सादि-पञ्च-दशो' को 'नान्दि-पञ्च-दशी' भी कहते हैं। 'पञ्च-दशी' के मन्त्रों के सब भेदों में ये ही तीन भेद मुख्य माने गए हैं। 'दक्षिणामूर्ति-मत' में गुर्वौघों के नाम निम्न प्रकार हैं—

दिव्यौघ—**पर-शिवानन्द-नाथ पर-शक्ति-देव्यम्बा, कौलिकानन्द - नाथ शुक्ला - देव्यम्बा तथा कुलेश्वरानन्द-नाथ कामेश्वरी-देव्यम्बा।**

सिद्धौघ—**भोगानन्द-नाथ, विलन्नानन्द-नाथ तथा सहजानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**गगनानन्द-नाथ, विश्वानन्द-नाथ, विमलानन्द-नाथ, मदनानन्द - नाथ, भुवनानन्द-नाथ, लीलानन्द-नाथ, स्वात्मानन्द-नाथ तथा प्रियानन्द-नाथ।**

(**षोडशी में विशेष**) परौघ—**श्रीविद्यानन्द - नाथात्मक चर्यानन्द - नाथ, उड्डीशानन्द - नाथ, प्रकाशानन्द-नाथ, विमर्शानन्द-नाथ तथा आनन्दानन्द-नाथ। इति प्रथमः।**

षण्ठीशानन्द-नाथ, ज्ञानानन्द-नाथ, सत्यानन्द-नाथ तथा पूर्णानन्द-नाथ। इति द्वितीयः।

मित्रेशानन्द-नाथ, स्वभावानन्द-नाथ, प्रतिभानन्द-नाथ तथा सुभगानन्द-नाथ। इति तृतीयः।

'आनन्द-भैरव-मत' में भी बहुत-सी परम्पराओं में ऐसा ही है, परन्तु किसी - किसी परम्परा में नाम भिन्न हैं। यथा—

दिव्यौघ—**पर-प्रकाशानन्द-नाथ, पर-विमर्शानन्द-नाथ, कामेश्वर्यम्बा, मोक्षानन्द-नाथ, अमृतानन्द-नाथ, पुरुषानन्द-नाथ तथा अघोरानन्द-नाथ।**

सिद्धौघ—**प्रकाशानन्द-नाथ, सदानन्द-नाथ तथा सिद्धौघानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**उत्तमानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ, सर्व-ज्ञानानन्द-नाथ, सिद्धानन्द-नाथ, गोविन्दानन्द-नाथ तथा शङ्करानन्द-नाथ।**

हयग्रीव-मत में—दिव्यौघ—**पर-शिवानन्द-नाथ, कामेश्वरी-देव्यम्बा तथा दिव्यौघानन्द-नाथ।**

सिद्धौघ—**महोच्चानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ, प्रज्ञा-देव्यम्बा तथा प्रकाशानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**दिव्यानन्द-नाथ, चित्रानन्द-नाथ, स्वात्मानन्द-नाथ तथा प्रतिभानु-नन्द-नाथ।**

जिस प्रकार सभी नदी-नाले जाकर समुद्र में मिल जाते हैं, उसी प्रकार स्वाम्नाय-क्रम के सिवा अन्य सब प्रकार के क्रम 'श्रीविद्या पञ्च-दशी' में ही मिलकर 'षोडशी-महा-षोडशी-साम्राज्य - मेधा' तक पहुँचते हैं।

स्वाम्नाय-क्रम, महा-क्रम तथा पूर्ण-क्रम के अतिरिक्त अन्य बहुत प्रकार के क्रम हैं। उनमें से जिन्हें मैं जानता हूँ, उनके नाम हैं—१ पञ्च-सरस्वती-क्रम, २ हाद्याम्नाय-पञ्च-क्रम, ३ काद्याम्नाय-पञ्च-क्रम, ४ पञ्च-लक्ष्मी-क्रम, ५ दुर्गा-क्रम, ६ महा-विद्या-क्रम, ७ चक्रेश्वरी-क्रम, ८ नित्या-क्रम। अशक्तों के लिए 'षडाम्नायात्मक लघु-क्रम' है

'हाद्याम्नाय पञ्च-क्रम' में 'श्रीविद्या-पञ्च-दशी तक पाँच क्रम इस प्रकार हैं—**१ अनिरुद्ध-सरस्वती** (पूर्वोक्त दक्षिणा-काली का नामान्तर) की पूर्वोक्त दक्षिण-काली द्वा-विंशाक्षरी-विद्या, २ **महा-नील-सरस्वती** (उग्र-तारा) की सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या, ३ **महा-बाल - सरस्वती** (पूर्वोक्त बाला - त्रिपुरा) की वागादि-त्र्यक्षरी विद्या तथा ४ **ज्ञान-सरस्वती** (द्वादश-स्वर-सविन्दु-विन्दु-युत-व्योम-भृगु-वह्नि एवं कूट,

आकाश-भृग्वन्तिमानल-स-वामाक्षी-विन्दु एवं कूट, हर-भृगु-लेख-वीज-प्रसू-वृहद्भानु - ससर्ग एवं कूट) की 'त्रिकूटाक्षरी विद्या'।

'ज्ञान-सरस्वती' का विनियोग निम्न प्रकार है—**दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, ज्ञान-सरस्वती देवता, द्वितीय-कूटं वीजं, तृतीय-कूटं शक्तिः, प्रथम-कूटं कीलकम्।**

प्रथम-कूट के षड्-दीर्घ-भाजा से कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान निम्न प्रकार है—

उद्यत्-सूर्य-निभां त्र्यक्षां, पीनोन्नत-पयोधराम्। पुस्तकाक्ष-वराभयैः, शोभितां च चतुर्भुजाम्॥

रक्ताम्बर-पराधीनां, शान्तां चन्द्र-कला-धरां। रक्त-पद्म-समासीनां, ध्यायेद् ज्ञान-सरस्वतीम्॥

५ **'श्रीविद्या-सरस्वती'** (पूर्वोक्त श्रीविद्या पञ्च-दशी) को 'मेधा-दीक्षा' तक ग्रहण करे। इस क्रम में पहले पूर्वोक्त 'श्यामा-काली' की त्र्यक्षरी विद्या को ग्रहण करते हैं।

हाद्याम्नाय पंच-क्रम

हंस-क्रम के अन्तर्गत 'हाद्याम्नाय पञ्च-क्रम' के पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—

१ **आद्या-काली** की पूर्वोक्त षोडशाक्षरी-विद्या।

२ **उग्र-तारा** की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या।

३ **छिन्नमस्ता** की उत्तराम्नायात्मक षडर्ण-विद्या (**ह्रींऐंहूंऐंहूं फट्**)। इस विद्या के भैरव ऋषि, सम्राट् छन्द, छिन्नमस्ता देवता, 'ऐं' वीज, 'हूं' शक्ति, 'फट्' कीलक है। प्रणव (ॐ) के पश्चात् षड्-दीर्घ-भाजा स्वर ('आं, ईं' आदि) के अन्त में '**खड्गाय स्वाहा, सु-खड्गाय स्वाहा, विराजाय स्वाहा, पाशाय स्वाहा, अंकुशाय स्वाहा, असुरान्तकाय स्वाहा**' पद लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'—'**प्रत्यालीढ-पदां**' इत्यादि। इनका यन्त्र है—**अधो-मुख त्रिकोण, त्रि-वृत्त, पुनः अधो - मुख त्रिकोण, अष्ट - दल और त्रि-रेखात्मक तथा चतुर्द्वार - युक्त भूपुर**। इस यन्त्र में छिन्नमस्ता के सभी भेदों की, उत्तराम्नाय या दक्षिणाम्नाय—दोनों ही आम्नायों से, सपर्या हो सकती है। विशेष करके यह उत्तराम्नायात्मक यन्त्र है। इनका दक्षिणाम्नायात्मक यन्त्र अलग है। तथापि इस विद्या का मूल यन्त्र यही है, अतः इसमें दक्षिणाम्नाय से भी सपर्या हो सकती है।

४ ऊर्ध्वाम्नायात्मक **वगलामुखी** की गज-चत्वारिंशदक्षरी विद्या (**ॐ ह्लीं ऐं श्रीं श्रीवगलानने मम रिपुं नाशय नाशय ममैश्वर्याणि देहि देहि शीघ्रं मनोवाञ्छितं कार्यं साधय साधय ह्लीं स्वाहा**)। इस विद्या के भैरव ऋषि, विराट् छन्द, श्रीवगलानना देवता, 'श्रीं' वीज, 'ह्लीं' शक्ति, 'ऐं' कीलक है। षड्-दीर्घ-भाजा माया ('ह्लां ह्लीं' इत्यादि) से 'कर - षडङ्ग - न्यास' करे। इनका 'ध्यान'—'**सौवर्णासन-संस्थितां**' इत्यादि है। वगलामुखी के सभी भेदों का यन्त्र है—**अधो-मुख त्रिकोण, षट् - कोण, अष्ट - दल, षोडश-दल और त्रिरेखात्मक तथा चतुर्द्वार-युक्त भूपुर**।

५ पूर्वोक्त '**श्रीविद्या पञ्च-दशी**'।

काद्याम्नाय पञ्च-क्रम

अब कुण्डलिनी-क्रम के अन्तर्गत '**काद्याम्नाय-क्रम**' का वर्णन करता हूँ। इसके पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—१ **काम-कला-काली** की अष्टादशाक्षरी विद्या, २ **भुवनेश्वरी** की पूर्वोक्त महा-पञ्चाक्षरी विद्या, ३ **त्रिशक्ति चामुण्डा** की पूर्वोक्त महा-नवार्ण-विद्या, ४ **समया-कुब्जिका** की पूर्वोक्त द्वा - त्रिंशाक्षरी विद्या, ५ **श्रीविद्या-पञ्च-दशी**।

यह क्रम 'ज्ञान-योग' से आरम्भ होता है। 'ज्ञान-मार्ग' विहङ्गम मार्ग है, अतः उत्तराम्नाय की अन्तिम विद्या ही इस क्रम के आदि में है। यह क्रम गृहस्थ के लिए नहीं है।

पञ्च-लक्ष्मी-क्रम

अब 'पञ्च-लक्ष्मी-क्रम' का वर्णन करता हूँ। इसके पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—

१ **सौभाग्य-लक्ष्मी** की एकाक्षरी विद्या **'श्रीं'**। भृगु ऋषि, निवृच्छन्द, सौभाग्य-लक्ष्मी देवता, शं बीज, ईं शक्ति, रं कीलक। रमा-बीज का षड्-दीर्घ-भाजा ('श्रां श्रीं' इत्यादि) कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'—

तप्त-कार्त-स्वराभासां, दिव्य - रत्न - विभूषिताम्। आसिच्यमानममृतैर्मुक्ता - रत्न - द्रवैरपि ॥
शुभ्राभामेभ-युग्मेन, मुहुर्मुहुरपि प्रिये ! रत्नौघ - बद्ध - मुकुटां, शुद्ध - क्षौमाङ्ग - रागिणीम् ॥
पद्माक्षीं पद्म-नाभेन, हृदि चिन्त्यां स्मरेद् बुधः। एवं ध्यात्वा यजेद् देवीं, पद्म-युग्म - धरां सदा ॥
वरदाभय-शोभाढ्यां, चतुर्बाहुं सु-लोचनाम् ॥

२ **महा-लक्ष्मी** की पूर्वोक्त पूर्वाम्नायात्मक रमाद्यष्टाविंशाक्षरी-विद्या।

३ **त्रि-शक्ति लक्ष्मी** की त्र्यक्षरी विद्या **('श्रीं ह्रीं क्लीं')**। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, त्रि-शक्ति लक्ष्मी देवता, 'श्रीं' बीज, 'ह्रीं' शक्ति, 'क्लीं' कीलक। मूल-मन्त्र की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग - न्यास' करे। 'ध्यान' है—

नव - हेम - स्फुरद् - भूमौ, रत्न-कुट्टीर-मण्डपे। महा-कल्प-वनान्तस्थे, रत्न - सिंहासने वरे ॥
कमलासन-शोभाढ्यां, रत्न-मञ्जीर-कुण्डलाम्। स्फुरद्-रत्न-लसन्मौलीं, रत्न-कुण्डल-मण्डिताम् ॥
अनर्घ्य - रत्न - घटित - नाना - भूषण - भूषिताम्। दधतीं पद्म - युगलं, पाशांकुश-धनुः-शरान् ॥
षड्-भुजामिन्दु-वदनां, दूतिभिः परिवारिताम्। चारु-चामर-हस्ताभिः, रत्नादर्श - सुपाणिभिः ॥
ताम्बूलं स्वर्ण-पात्रीभिर्भूषा-पेटी-सुपाणिभिः। एवं त्रि-शक्ति-लक्ष्म्यम्बां, ध्यायेत् सर्व-समृद्धिदाम् ॥

४ **श्रीविद्या - लक्ष्मी** की पूर्वोक्त 'श्रीविद्या पञ्च - दशी'।

लक्ष्मी के सभी भेदों का वीर-भाव से अर्चन करने का 'लक्ष्मी श्री-यन्त्र' है—**अधो-मुख त्रिकोण, द्वि-रेखात्मक पञ्च-कोण, फिर परस्पर संश्लिष्ट तीन अधो-मुख, तीन ऊर्ध्व-मुख त्रिकोण, तब अष्ट - दल, दश-दल, पुनः दश-दल, फिर पञ्च-कोण और तब भू-पुर।**

पूर्वोक्त चारों लक्ष्मियाँ पूर्वाम्नाय से उपासिता हैं।

'लक्ष्मी-श्रीयन्त्र' में **'आवरण-पूजा'**—सबसे पहले त्रिकोण में षडङ्ग-पूजा कर उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे। तब त्रिकोण की रेखाओं में गुरु-पंक्ति की पूजा कर कोणों में सशक्तिक ब्रह्मा, विष्णु तथा सदा-शिव की सपर्या कर पार्श्व में गङ्गा और यमुना का अर्चन करे। तत्-पश्चात् अन्तः-पञ्च-कोण में 'पञ्च-लक्ष्मी' की और बहिः-कोण-पञ्च-कोण में १ कोश, २ निधि, ३ काम-धेनु, ४ कल्प-वृक्ष तथा ५ कुबेर की; षट्-कोण में १ नन्दजा, २ रक्त-दन्तिका, ३ शाकम्भरी, ४ दुर्गा, ५ भीमा तथा ६ भ्रामरी की; फिर अन्तर्दशार में १ हिरण्य - वर्णा, २ हरिणी, ३ पद्मा, ४ पद्म - वर्णा, ५ पद्मस्था, ६ आर्द्रा, ७ तर्पयन्ती, ८ तृप्ता, ९ ज्वलन्ती तथा १० स्वर्ण - प्राकारा की; तब बहिर्दशार में १ अन्न - पूर्णा, २ भद्र - काली, ३ कराली, ४ प्रत्यङ्गिरा, ५ कुब्जिका, ६ चामुण्डा, ७ सुन्दरी, ८ जया, ९ विजया तथा १० चण्डिका की सपर्या करे।

तत्-पश्चात् अष्ट-दल में असिताङ्गादि अष्ट-भैरव सहित ब्रह्माण्यादि अष्ट-मातृका का; अन्तर्दश-दल में कालिकादि दश महा-विद्या का; बहिर्दश - दल में सूर्यादि नव-ग्रह तथा मुथहा का; तदग्र-भाग में अपने ग्रह के क्रम से मङ्गलादि अष्ट-मातृका तथा विकटा और योगिनी का अर्चन करे। तद् - बहिः-पञ्च-कोण में १ गणपति, २ दुर्गा, ३ वायु, ४ आकाश तथा ५ कुमार की; भूगृह के ४ द्वारों में १ गणेश २ क्षेत्र-पाल, ३ बटुक तथा ४ योगिनी की; तद्-बहिः इन्द्रादि दश दिक्पाल तथा उनके आयुधों की सपर्या कर आवरण को समाप्त करे। अब 'चक्रेश्वरी-क्रम' की पन्द्रह विद्याओं का वर्णन करता हूँ—

चक्रेश्वरी-क्रम की १५ विद्याएँ

१ **त्रिपुरा** की नवाक्षरी विद्या--**अँ आँ सौः त्रिपुरायै नमः**। दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, त्रिपुरा देवता, 'अँ' वीज, 'सौः' शक्ति, 'आँ' कीलक। वीज-त्रय (अँ आँ सौः) की द्विरावृत्ति से कर-षडङ्ग न्यास करे। 'ध्यान'—

'शुद्ध-स्फटिक-वर्णाभां, त्रिनेत्रां च चतुर्भुजां। पुस्तकश्चाक्ष-सूत्रं च, पद्म-द्वय-करां शुभाम्।
त्रैलोक्य - मोहने ध्यायेत्, त्रिपुरां चतुरस्रके॥

इस क्रम में 'अन्तर्याग' आवश्यक है। 'मूलाधार-चक्र' में शुक्लारुण-कृष्ण-त्रिरेखक भूपुर-चक्र की भावना कर मन्त्र के उच्चारण का प्रकम्पन उस चक्र में लगाए। उससे जो नाद निकले, उसका श्रवण कर उसमें लय होकर हृदय-कमल के 'घूँ' नाद में उस नाद को लय कर ध्यानोक्त रूप की कल्पना कर जप करे।

२ **त्रिपुरेशिनी** की दशाक्षरी विद्या—**ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरेशिन्यै नमः**। वीज-त्रय (**ऐं क्लीं ह्रीं**) से कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां त्रिनेत्रां च, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, शोभितां हस्त-कमलां, महा-वृत्त-त्रये स्मरेत्,
त्रैवर्ग्य - साधने चक्रे, ध्यायेच्छ्रीत्रिपुरेशिनीम्।'

इस क्रम में भी 'मूलाधार-चक्र' में पूर्व-वत् 'अन्तर्याग' करना आवश्यक है।

३ **त्रिपुरेशी** की नवाक्षरी विद्या--**ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्यै नमः**। वीज - त्रय (**ऐं क्लीं सौः**) से कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'--

'शुभां चतुर्भुजां ध्यायेत्, पाशांकुश-वराभयैः, भूषितां षोडशाराब्जे, त्रिपुरेशीं सुरेश्वरीम्।

'स्वाधिष्ठान-चक्र' में पूर्ण - चन्द्र - वत् शुद्ध-वर्ण के षोडश - दल चक्र की भावना कर पूर्व-वत् 'अन्तर्याग' करे।

४ **त्रिपुर-सुन्दरी** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुर - सुन्दर्यै नमः**। वीज - त्रय (**ह्रीं क्लीं सौः**) से कर-षडङ्ग-न्यास। 'मणिपुर-चक्र' में जवा-कुसुम - प्रभ अष्ट - दल - चक्र की भावना कर अन्तर्याग करे।

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। भूपुर, वृत्त-त्रय, षोडश-दल तथा अष्ट - दल—ये चक्र-चतुष्टय मिलकर 'पूर्वाम्नायात्मक' चक्र बनेगा। 'स्वाधिष्ठान' पूर्वाम्नायात्मक चक्र है। अतः—

५ **भुवनेश्वरी** की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्या ग्रहण कर 'स्वाधिष्ठान' में पूर्वोक्त चक्र - चतुष्टय से निर्मित चक्र की भावना कर 'अन्तर्याग' करे।

६ **त्रिपुर-वासिनी** की एकादशाक्षरी विद्या--**हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुर-वासिन्यै नमः**। वीज - त्रय (**हैं ह्क्लीं सौः**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां चतुर्हस्तां, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, भूषितां सर्व-सौभाग्य-दायके मनु - कोणके,
त्रिपुर-वासिनीं ध्यायेत्, साधकः स्थिर-मानसः।'

'अनाहत-चक्र' में सिन्दूराभ चतुर्दशार-चक्र की भावना कर 'अन्तर्याग' करे।

बहुत से लोग 'हृदय - पद्म' और 'अनाहत - चक्र' को एक ही समझते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। 'अनाहत-चक्र' फुफ्फुस (फेफड़े) के मध्य में अर्थात् वक्षः-स्थल के ठीक बीच में रहता है और 'हृत् - पद्म' धकधकानेवाला हृदय वक्षः-स्थल के बाईं ओर रहता है।

७ **त्रिपुराश्री** की दशाक्षरी विद्या—**ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सः त्रिपुरा - श्रियै नमः**। वीज - त्रय (**ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सः**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'सहस्रार्क-समाभासां, पुस्तकाक्ष - वराभयैः, शोभितां हस्त - कमलां बहिर्दशार-चक्रे,
सर्वार्थ-साधकाख्याने, चिन्तयेत् त्रिपुरा-श्रियम्।'

८ **त्रिपुर - मालिनी** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुर-मालिन्यै नमः**। वीज - त्रय (**ह्रीं क्लीं ब्लें**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां त्रिनयनां, पाशांकुश-कपालकम्, वराभयाक्ष-मालां च, दधतीं त्रिपुरां पराम्,
मालिन्यन्तर्दशाराख्ये, सर्व-रक्षा-करे स्मरेत्।'

'आज्ञा-चक्र' में जवा-कुसुम-प्रभ अन्तर्दशार-चक्र की भावना कर अन्तर्याग करे।

६ पूर्वोक्त चतुर्दशार-चक्र तथा दशार-चक्र-द्वय दक्षिणाम्नायात्मक हैं। अतः दक्षिण - काली की पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी विद्या ग्रहण कर दक्षिणाम्नायात्मक मणिपुर-चक्र में पूर्व-वत् कर्म करे।

१० **त्रिपुरा-सिद्धा** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं श्रीं ह्रीं त्रिपुरा-सिद्धायै नमः**। वीज-त्रय (**ह्रीं श्रीं ह्रीं**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'शुक्ल-वर्णां त्रिनयनां, पाशांकुश-कपालिनीम्, अभयां सर्व-रोगघ्नेऽष्टारके चिन्तयेत् सदा।
साधकैस्त्रिपुरा-सिद्धां, सर्वालङ्कार - भूषिताम्॥

इनका चक्र 'नाद' है। उसमें पद्म-राग-प्रभ अष्टार-चक्र की भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे।

११ '**त्रिपुराम्बा**' की दशाक्षरी विद्या—**ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बायै नमः**। कूट-त्रय (**ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

रक्ताम्बरां मुण्ड-मालीं, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, भूषितां त्र्यस्र-मध्यस्थां, सर्व-सिद्धि-प्रदायिकाम्।
सर्वालङ्कार-संयुक्तां, ध्यायेच्छ्रीत्रिपुराम्बिकाम्॥

इनका 'विन्दु-चक्र' है। उसमें बन्धूक - कुसुमारुण त्रिकोण - चक्र की भावना कर पूर्व - वत् कर्म करे।

१२ '**महा-त्रिपुर-भैरवी**' (महा-त्रिपुर-भैरवी के पूर्वोक्त कूट-त्रय के पश्चात् 'त्रिपुर-भैरव्यै' तथा नमः एवं एकादशाक्षरी विद्या)। उक्त कूट-त्रय से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—'**उद्यद्भानु-सहस्र-कान्ति-मरुण**' इत्यादि। इनका 'सहस्रार-चक्र' है। उसमें शुक्लारुण-वैन्दव-चक्र की भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे।

१३ पूर्वोक्त अष्टार, त्रिकोण तथा वैन्दव-चक्र पश्चिमाम्नायात्मक हैं। अतः पश्चिमाम्नाय की पूर्वोक्त '**वज्र-कुब्जिका**' की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या ग्रहण कर पश्चिमाम्नायात्मक अनाहत - चक्र में पूर्व-वत् कर्म करे।

१४ पूर्वोक्त दश-वक्त्रा भरतोपासिता 'गुह्य-काली' की षोडशाक्षरी विद्या ग्रहण करे। चतुर्दशार-चक्र से वैन्दव-चक्र तक दश-चक्रों का समष्टि-रूप उत्तराम्नायात्मक है। अतः उत्तराम्नायात्मक 'विशुद्धि-चक्र' में पूर्व-वत् कर्म करे।

१५ 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी' की त्रयो-दशाक्षरी विद्या—**कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं महा-त्रिपुर-सुन्दर्यै नमः।** सभी न्यास पञ्च-दशी के अनुसार। 'ध्यान'—पूर्वोक्त '**सूर्येन्द्वग्नि-मयंक-पीठ**' इत्यादि। 'सहस्रार' के ऊपर के मनो-वाचा-गोचरागम्य 'महा-वैन्दव-चक्र' में इनकी भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे। 'महा-वैन्दवात्मक-चक्र' में भूपुर-चक्र-पर्यन्त समस्ताङ्ग-पूर्ण श्रीचक्र ऊर्ध्वाम्नायात्मक है। अतः ऊर्ध्वाम्नायात्मक 'आज्ञा-चक्र' में समस्ताङ्ग-पूर्ण 'श्रीचक्र' की भावना कर पञ्च-दशी के उच्चारण द्वारा उस चक्र को प्रकम्पित करे। उससे भ्रमर-नाद निकलेगा। उसे हृदय के 'धूं' नाद में लय कर वहाँ ध्यानोक्त मूर्ति की कल्पना करे। फिर उस नाद को 'विशुद्धि' के 'श्रीं' नाद में, तब 'आज्ञा' के 'भ्रमर - नाद' में लय कर 'सहस्रार' में ले जाकर 'भनीं' नाद में लय कर किञ्चित् काल तक अनुभव-गम्य आनन्द का उपभोग करे। फिर मन्त्र - योग के विधान से मृणाल - तन्तु द्वारा मूलाधार में पहुँच कर वहाँ से अनाहत तक उद्यदादित्य-वर्ण के अति शीतल 'वाग्भव-कूट' की, अनाहत से आज्ञा तक इन्द्र-गोप-सम 'काम-राज-कूट' की और आज्ञा-चक्र में श्वेत-वर्ण के 'शक्ति-कूट' की भावना कर स्वयं मन्त्र-रूप बनकर पञ्च - दशी का जप करे। तब स्व-देह को समस्त श्रीचक्र-रूप भावना कर विश्राम करे।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। सभी मतों में प्रातः - कृत्य और अजपा - समर्पण तथा अजपा-सङ्कल्प अपनी - अपनी परम्परानुसार किसी-न-किसी प्रकार के आवश्यक हैं, परन्तु 'दक्षिणामूर्ति-मत' में प्रातः-कृत्य का ढंग अलग है। निशा-कृत्य भी अत्यावश्यक है। यह निशा-कृत्य रात्रि में शय्या में बैठ कर करे। तब सोना चाहिए। प्रायः बहुत से 'कौल' लोग 'आनन्द-भैरव-मत' से ही उपासना करते हैं।

भगवती दुर्गा के पंच-क्रम

१ **बीज-रूपा-दुर्गा** की (दुरित्येकाक्षर) एकाक्षरी विद्या—**दुः**। काश्यप ऋषि, गायत्री छन्द, बीजात्मिका दुर्गा देवता। इनके बीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। षड्-दीर्घ-भाजा बीज से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

दूर्वा-श्यामां त्रिनेत्रां च, कमलेऽष्ट-दले स्थिताम्, शूलं बाणं खड्ग-चक्रे, शङ्ख-खेटं शरासनम्।
कपालानि च दक्षाधः, क्रमेण दधतीं स्मरेत्॥

२ **दुर्गा** की अष्टाक्षरी विद्या—**ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः**। नारद ऋषि, गायत्री छन्द, दुर्गा देवता। बीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। 'ध्यान'—

सिंहस्था शशि-शेखरा, मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः।
शङ्खं चक्र-धनुः शरांश्च, दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता॥
आमुक्ताङ्गद-हार-कङ्कण-रणत्-काञ्ची-क्वणन्नूपुरा।
दुर्गा दुर्गति-हारिणी, भवतु वो रत्नोल्लसत्-कुण्डला॥

३ **जयदुर्गा** की एकादशाक्षरी विद्या—**ॐ दुं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा**। नारद ऋषि, गायत्री-छन्द, जयदुर्गा देवता, ॐ बीज, स्वाहा शक्ति, 'रक्षिणि' कीलक। मूल के २, २, २, ३, १, सर्व अक्षरों से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

कालाभ्राभां कटाक्षैररि-कुल-भयदां मौलि-बद्धेन्दु-खण्डाम् ।
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।।
सिंह - स्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीम् ।
ध्याये दुर्गां जयाख्यां त्रिदश-परिवृतां सेवितां सिद्धि-कामैः ।।

४ पूर्वोक्त त्रिशक्ति-चामुण्डा (चण्डी दुर्गा) की महा-निर्वाण-विद्या ग्रहण करे ।

५ कात्यायनी की एक-विंशाक्षरी विद्या—स्ह्लक्ष्म्यीं स्हस्फ्रें क्लीं हूं ह्रीं क्लह्रीं कात्यायन्यै स्फ्रें काम-दायी हूं स्फ्रें नमः स्वाहा ।

इनका विनियोग नहीं है । 'डाकिनी अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर वीज का षड्-दीर्घ - भाजा कर कनिष्ठका से कर-षडङ्ग, फिर हृदयादि षडङ्ग-न्यास करे । 'ध्यान'—

जटा-जूट - समायुक्तामर्धेन्दु - कृत - लक्षणाम् । नेत्र - त्रय-समायुक्तां, पद्मेन्दु - सदृशाननाम् ।
अतसी - पुष्प - वर्णाभां, सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्, नव - यौवन - सम्पन्नां, सर्वाभरण - भूषिताम् ।।
सुचारु-दशनां तद्-वत्, पीनोन्नत-पयोधराम्, त्रिभङ्ग-स्थान - संस्थानां, महिषासुर - मर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्, खड्गं चक्रं क्रमादधः, तीक्ष्णं वाणं तथा शक्तिं, वामतोऽपि निबोधत ।।
खेटकं पूर्ण - चापं च, पाशमंकुशमूर्ध्वतः, घण्टां च परशुं चापि, वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषं तद्-वद्, विशिरस्कं प्रदर्शयेत्, शिरश्छेदोद्भवं तद्-वद्, दानवं खड्ग-पाणिकम् ।।
स - पाशं वाम - हस्तेन, धृत - केशं च दुर्गया, वमद्-रुधिर - वक्त्रं च, देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं, समं सिंहोपरि - स्थिताम्, किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि ।।
स्तूयमानं च तद् - रूपममरैः सन्निवेशयेत् ।

६ भद्र-काली दुर्गा की एकादशाक्षरी विद्या—स्ह्लक्ष्म्यीं स्हस्फ्रें हूं ह्रीं भद्र-काल्यै स्फ्रें हूं स्फ्रें ।
न्यासादि पूर्वोक्त कात्यायनी-वत् । ध्यान—'यदा तु षोडश-भुजा' इत्यादि ।

७ उग्रचण्डा दुर्गा । ८ पूर्वोक्त समया-कुब्जिका । ९ पूर्वोक्त श्रीविद्या-पञ्चदशी ।

पूर्णाभिषेक-विधान

'पूर्णाभिषेक' के पहले दिन

'पूर्णाभिषेक' करने के पहले दिन 'पूर्णाभिषिक्त' गुरुदेव विघ्नों की शान्ति के लिए सर्व - प्रथम 'श्रीगणपति' का पूजन करें। यथा——

सङ्कल्प : ॐ अद्येत्यादि…अमुक-गोत्रोत्पन्न-अमुक-शर्मणः शुभ - पूर्णाभिषेक - कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं श्रीगणपति-पूजनमहं करिष्ये।

विनियोग : ॐ अस्य श्रीगणपति-मन्त्रस्य श्रीगणक ऋषिः। निवृत् छन्दः। श्रीगणपति-देवता। शुभ-पूर्णाभिषेक-कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीगणक-ऋषये नमः शिरसि। निवृच्छन्दसे नमः मुखे। श्रीगणपति-देवतायै नमः हृदि। शुभ-पूर्णाभिषेक-कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यास : (१) कर-न्यास—गां अंगुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट्। गैं अनामाभ्यां हुं। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

(२) अङ्ग-न्यास——गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुं। गौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। गः अस्त्राय फट्।

ध्यान—
सिन्दूराभं त्रि-नेत्रं पृथुतर-जठरं हस्त - पद्मैर्दधानम्,
दन्तं पाशांकुशेऽष्टान्युरु-कर-विलसद्-वारुणी-पूर्ण - कुम्भम्।
बालेन्दु-द्योति-मौलिं करि-पति-वदनं बीजपूरार्द्र-गण्डम्,
भोगीन्द्राबद्ध-भूषं भजत गण-पतिं रक्त - वस्त्राङ्ग - रागम्॥

मानस पूजन : लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः——अधो-मुख कनिष्ठा - अंगुष्ठ से। हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः——अधो-मुख तर्जनी-अंगुष्ठ से। यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीगणपतये घ्रापयामि नमः——ऊर्ध्व - मुख तर्जनी - अंगुष्ठ से। रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीगणपतये दर्शयामि नमः——ऊर्ध्व-मुख मध्यमा - अंगुष्ठ से। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीगणपतये निवेदयामि नमः——ऊर्ध्व - मुख अनामिका - अंगुष्ठ से। सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः—ऊर्ध्व-मुख सर्वांगुलियों से।

मूल-मन्त्र (गं) का एक माला जप कर उसका फल श्रीगणपति को समर्पित करे—

ॐ गुह्यातिगुह्य-गोप्ता त्वं, गृहाणास्मत् कृतं जपम्। सिद्धिर्मे भवतु देव ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वर !॥

अब श्री गणपति के पूजन-यन्त्र (अष्ट - दल - कमल, भूपुर) में पीठ - शक्तियों का पूजन करे। यथा——केशरों और मध्य में 'ॐ तीव्रायै नमः, ज्वालिन्यै, नन्दायै, भोगदायै, काम - रूपिण्यै, उग्रायै, तेजोवत्यै, सत्यायै, विघ्न-नाशिन्यै' मन्त्रों द्वारा पूजा कर 'सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः' मन्त्र से सम्पूर्ण यन्त्र की पूजा कर श्रीगणपति को आसन प्रस्तुत करे। पुनः श्रीगणपति का ध्यान कर, पञ्च-तत्त्वों और पञ्चोपचारों से उनकी पूजा करे। तब उक्त पूजन-यन्त्र में 'आवरण - पूजा' प्रारम्भ करे——(१) कर्णिकाओं में पूर्वादि-क्रम से—'ॐ गणाधिपतये नमः, गणेशाय, गण-नायकाय, गण - क्रीडाय' मन्त्रों से, (२) केशरों में

अग्नि आदि कोणों, मध्य में और चारों दिशाओं में—'गां हृदयाय नमः' क्रम से षडङ्ग-मन्त्रों से, (३) पद्म के दलों में पूर्वादि-क्रम से—'ॐ वक्र-तुण्डाय नमः, एक-दन्ताय, महोदराय, गजाननाय, लम्बोदराय, विकटाय, विघ्न-राजाय, धूम्र-वर्णाय' मन्त्रों से, (४) दलों के अग्र-भाग में—'ॐ ब्राह्म्यै नमः' आदि अष्ट-मातृकाओं के मन्त्रों से, (५) दलों के बाहर—'ॐ इन्द्राय नमः' आदि अष्ट-दिक्-पालों के मन्त्रों से, (६) दिक्-पालों के समीप—'ॐ वज्राय नमः' आदि उनके अस्त्र-मन्त्रों से पूजन करे।

आवरण-पूजन के बाद श्रीगणपति को पुनः धूप-दीप प्रदान कर पूजन का विसर्जन करे। अन्त में साधकों को भोजनादि से तृप्त कर दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे।

'पूर्णाभिषेक' के दिन

दूसरे दिन 'स्नान', 'सन्ध्या', 'पाठ-पूजा' से निवृत्त होकर 'शिष्य' जन्म-जन्मान्तर के अपने पापों की निवृत्ति के लिए तिल और सोने का दान करे। इसके लिए निम्न प्रकार 'सङ्कल्प' करे—'अद्य अमुक-गोत्रः श्रीमदमुक-देव-शर्मा आजन्म-कृताशेष-दुष्कृत-क्षय-काम अमुक-गोत्राय अमुक-शर्मणे ब्राह्मणाय प्रदातुं काञ्चन-सहितांस्तिलान् अहमुत्सृजे।'

दान देने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराए। फिर 'सूर्यार्घ्य' देकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नव-ग्रह और षोडश मातृकाओं का अर्चन करते हुए 'वृद्धि-श्राद्ध' की क्रिया को करे।

तदनन्तर शिष्य 'श्रीगुरु-देव' से 'पूर्णाभिषेक' हेतु प्रार्थना करे। यथा—

त्राहि नाथ ! कुलाचार्य ! नलिनी-कुल-वल्लभ ! त्वत्-पादाम्भोरुहच्छायां, देहि मूर्घ्नि कृपा-निधे !
आज्ञां देहि महा-भाग ! शुभ-पूर्णाभिषेचने ! निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्-प्रसादतः !

इस पर 'गुरु-देव' शिष्य को आशीर्वाद दें। यथा—

शिव-शक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम्। मनोरथ-मयी सिद्धिर्जायतां शिव-शासनात्॥

गुरु का आशीर्वाद पाकर शिष्य 'सर्वोपद्रव-शान्ति' के लिए तथा आयु, लक्ष्मी, बल और आरोग्यता प्राप्ति के लिए 'पूर्णाभिषेक' हेतु 'सङ्कल्प' करे। यथा—'ॐ अद्य अमुक-गोत्र अमुक-शर्मा निःशेषोपद्रव-ध्वंस-काम आयु-लक्ष्मी-बलाऽऽरोग्य-कामश्च शुभ-पूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये।'

तब वस्त्राऽऽभूषणादि तथा प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि तत्त्वों से 'गुरु-पूजन' कर उनका 'वरण' करे।

इसके बाद 'गुरुदेव' एक सुसज्जित कमरे में चार अंगुल ऊँची और डेढ़ हाथ लम्बी 'वेदी' बनाएँ। उसके ऊपर पीत, रक्त, असित, श्वेत और श्याम-वर्ण के अक्षत-चूर्णों से सुन्दर 'सर्वतो-भद्र-मण्डल' बनाएँ। फिर स्व-कल्पोक्त विधि के अनुसार 'गुरुदेव' 'मानस-पूजन' पर्यन्त क्रिया करें, 'पञ्च-तत्त्वों' का शोधन करें। तब 'सर्वतो-भद्र-मण्डल' के मध्य में शिष्य की सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, रजत, ताम्र या मृण्मय 'कलश' को 'अस्त्र' (फट्) मन्त्र से प्रक्षालित कर तथा उसमें दधि, अक्षत छिड़क कर ब्रह्म-वीज (प्रणव—ॐ) द्वारा उसे 'गुरुदेव' स्थापित करें।

'घट-स्थापन' के अनन्तर 'कलश' को 'श्रीं' वीज द्वारा सिन्दूर से अङ्कित कर 'क्ष-कार' से लेकर 'अ-कार' पर्यन्त सानुस्वार विलोम मातृका-वर्णों सहित 'मूल-मन्त्र' का तीन बार जप करते हुए 'गुरुदेव' उस 'कलश' को 'कारण' अथवा 'तीर्थ-तोय' से परिपूर्ण करें। फिर उसमें 'सुवर्ण' और 'नव-रत्न' डालें। मुख के ऊपर सु-वर्ण या रजत या ताम्र के कटोरे या मृण्मय पात्र को 'कारण', फल तथा अक्षत से भर

कर उसे रमा (श्रीं) और माया-वोज (ह्रीं) के उच्चारण - पूर्वक रख दें। तब वाग्भव - वीज (ऐं) द्वारा पनस, उदम्बरु, अश्वत्थ, बकुल और आम के 'पञ्च-पल्लवों' को मुखस्थ पात्र के ऊपर रख दें।

'कलश' को ग्रीवा से लेकर नीचे तक दो रक्त वस्त्रों से आच्छादित कर दें। फिर पञ्च-तत्त्वों को 'कलश' में डालकर 'नौ' पात्रों को स्थापना करनी चाहिए।

'शक्ति' के लिए 'चाँदी' का, 'गुरु' के लिए 'स्वर्ण' का तथा इष्ट - देवता के लिए 'कपाल' या नारिकेल का पात्र होना चाहिए। शेष पात्र 'ताम्र' के उचित हैं। पाषाण, काष्ठ और लौह के पात्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

'पात्र-स्थापन' के बाद 'गुरु-मण्डल' तथा भगवती का 'तर्पण' कर 'गुरुदेव' अमृत - पूर्ण 'कलश' का पूजन करें। तदनन्तर 'सर्व-भूत-बलि' प्रदान कर 'सर्वतो-भद्र-मण्डल' में पीठ-देवताओं की अर्चना कर, अन्त में 'षडङ्ग - न्यास' करें। न्यास के बाद 'प्राणायाम' कर श्रीजगदम्बा का 'ध्यान', 'आवाहन' तथा 'पूजन' कर 'हवन' करें।

इसके बाद 'कुमारी-पूजन', 'शक्ति-सपर्या' तथा 'वीरावली' का समर्चन कर उन्हें नैवेद्य, वस्त्र, दक्षिणादि से सन्तुष्ट कर अन्त में शिष्य के पूर्णाभिषेक के लिए कौलों से आज्ञा लेनी चाहिए। यथा—

अनुगृह्णन्तु कौला मे, शिष्यं प्रति कुल-व्रताः। पूर्णाभिषेक - संस्कारे, भवद्भिरनुमन्यताम्॥

उपस्थित 'कौल' साधक निम्न प्रकार अपने शुभाशीष दें—

महा-माया-प्रसादेन, प्रभावात् परमात्मनः। शिष्यो भवतु पूर्णस्ते, पर-तत्त्व-परायणः॥

इस प्रकार आशीर्वाद मिल जाने पर 'गुरुदेव' शिष्य द्वारा अर्चित 'कलश' के ऊपर श्री जगदम्बा का पूजन कराएँ। फिर 'गुरुदेव' काम, माया और रमा-वीज (क्लीं ह्रीं श्रीं) का जप करते हुए 'कलश' का स्पर्श करें और निम्न मन्त्र पढ़ें—

उत्तिष्ठ पूर्ण-कलश! देवतात्मक! सिद्धिद! त्वत्-तोय-पल्लवैः सिक्तः, शिष्यो ब्रह्म-रतोऽस्तु मे॥

अव 'गुरुदेव' शिष्य को उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठाएँ और उसके शिर के ऊपर 'पञ्च-पल्लव' के गुच्छे द्वारा कलश-जल से प्रोक्षण (अभिषेक) करें। पहले वे निम्न 'विनियोग' पढ़ें—

'एषां शुभ-पूर्णाभिषेक-मन्त्राणां श्रीसदा-शिव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। अमुक देवता (यहाँ इष्ट-देवता का नामोच्चारण करें)। **ॐ बीजं। शुभ-पूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः।'**

इसके बाद निम्न मन्त्रों द्वारा उक्त प्रकार अभिषेक करना प्रारम्भ करें—

गुरवस्त्वाऽभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः। दुर्गा-लक्ष्मी-भवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः॥
षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिष-मर्दिनी। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा॥
जय-दुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा॥
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वन-मालिनी। इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाऽभिषिञ्चन्तु शक्तयः॥
भैरवी भद्र-काली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा। श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा॥
महा-काली महा-लक्ष्मीर्महा-नील-सरस्वती। उग्र-चण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा॥
मत्स्यः कूर्मो वाराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा। रामो भार्गव-रामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः । कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरु-कुल्ला विरोधिनी । विप्र-चित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा।।
इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा । धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ।।
रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितो शनिः । राहुः केतुः स-नक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।।
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च । ऋतुर्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।
लवणेक्षु-सुरा-सर्पिर्दधि-दुग्ध-जलान्तकाः । समुद्रास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।
गङ्गा सूर्य-सुता रेवा चन्द्र-भागा सरस्वती । सरयूर्गण्डकी कुम्भी श्वेत-गङ्गा च कौशिकी ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।
अनन्ताद्या महा-नागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः । तरवः कल्प-वृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वा महीधराः ।।
पाताल-भूतल-व्योम-चारिणः क्षेम-कारिणः । पूर्णाभिषेक-सन्तुष्टास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु पाथसा ।।
दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगाः दौर्मनस्यं तथा शुचः । विनश्यन्त्वभिषेकेण परम-ब्रह्म-तेजसा ।।
अलक्ष्मी काल-कर्णी च डाकिन्यो योगिनी-गणाः । विनश्यन्त्वभिषेकेण काली-वीजेन ताडिताः ।।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्ट-कारकाः । विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमा-वीजेन ताडिताः ।।
अभिचार-कृता दोषा वैरि-मन्त्रोद्भवाश्च ये । मनो-वाक्कायजा दोषाः विनश्यन्त्वभिषेचनात् ।।
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सु-स्थिराः । अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।

अर्थात्—गुरु - मण्डल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी, षोडशी, तारा, नित्या, स्वाहा, महिष-मर्दिनी, जय-दुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगलामुखी, वरदा शिवा, नारसिंही, वाराही, वैष्णवी, वन-मालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री, भैरवी, भद्र - काली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति, महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-नील-सरस्वती, उग्र - चण्डा और प्रचण्डा महा-शक्तियाँ तुझे अभिषिक्त करें ।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम (सात अवतार), असिताङ्ग, रुरु, चण्ड ,क्रोध, उन्मत्त, भयङ्कर, कपाली और भीषण (अष्ट - भैरव), काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरु-कुल्ला, विरोधिनी, विप्र-चित्ता और महोग्रा शक्तियाँ, इन्द्र, अग्नि, शमन, रक्ष, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान (अष्ट लोक-पाल), रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु (नव - ग्रह) के साथ नक्षत्र, करण, योग, वार, दोनों पक्ष, दिन, षड्-ऋतु, मास और संवत्सर तुझे अभिषिक्त करें ।

लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, जल (सप्त समुद्र), गङ्गा, यमुना, रेवा, चन्द्र - भागा, सरस्वती, सरयू, गण्डकी, कुन्ती, श्वेत - गङ्गा, कौशिकी, आदि सब नदियाँ मन्त्रों से पवित्र जल से तेरा अभिषेक करें ।

अनन्त आदि महा-नाग, गरुड़ आदि पक्षी, कल्प-वृक्ष आदि तरु और पर्वत तेरा अभिषेक करें ।

स्वर्ग (आकाश), मृत्यु, पाताल लोकों में विचरण करनेवाले कल्याणकारी विग्रह 'पूर्णाभिषेक' से सन्तुष्ट होकर तेरा अभिषेक करें ।

दुर्भाग्य, दुर्यश, रोग, दौर्मनस्य आदि तेरे शोक पर-ब्रह्म के तेज से सर्वथा नष्ट हो जायँ ।

अलक्ष्मी, काल-कर्णी, डाकिनी आदि दुष्ट योगिनियाँ 'काली'-वीज 'क्रीं' से ताडित होकर नाश को प्राप्त हों । भूत, प्रेत, पिशाच और अनिष्ट करनेवाले दुष्ट - ग्रह आदि 'रमा' - वीज 'श्रीं' से ताडित होकर नष्ट हो जायँ । अभिचार (दुष्ट प्रयोग) द्वारा उत्पन्न या अरि-मन्त्र की प्राप्ति से प्रकट हुए समस्त दोष तथा मनसा वाचा कर्मणा उद्भूत जो दोष हैं, वे सब विलीन हो जायँ ।

हे शिष्य ! तेरी निखिल विपत्तियाँ नष्ट हों, सम्पत्तियाँ स्थिर हों तथा पूर्णाभिषेक के प्रभाव से तेरे समस्त मनोरथ पूर्णता को प्राप्त हों ।

इस प्रकार शिष्य का 'अभिषेक' करे । यदि शिष्य ने पहिले 'पशु-गुरु' से मन्त्र ग्रहण किया हो, तो 'कौलिक गुरु' पूर्वोपदिष्ट मन्त्र का भी उपदेश पुनः कर दें और आद्या (इष्ट - देवता) की पूर्ण विद्या को प्रदान करें । साथ ही 'गुरु-पादुका' और 'स्व-पादुका' भी उपदिष्ट करनी चाहिए ।

इसके उपरान्त शिष्य के किसी अङ्ग को स्पर्श कर अङ्ग-मातृकाऽक्षर से शिष्य का 'दीक्षा-नाम' उच्चारण करें, जिसके अन्त में 'आनन्द-नाथ' आए । यथा—अमृतानन्द-नाथ, घनानन्द-नाथ, भासुरानन्द-नाथ इत्यादि । शिष्य के पूर्व-नाम का उच्चारण कर दूसरा नाम उसे सुनाएँ, जैसे—'हे देवदत्त ! आज से तुम्हारा नाम 'उमानन्द-नाथ' हो गया है।'

'नाम-करण' के बाद शिष्य, 'गुरुदेव' द्वारा स्थापित 'यन्त्र' में स्वेष्ट-देवता की सपर्या कर, पुनः पञ्च - तत्त्वोपचारों से 'गुरुदेव' का अर्चन करे तथा गो, भूमि, हिरण्य, वस्त्र, अलङ्कार आदि यथा - शक्ति दक्षिणा प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करे ।

तदनन्तर शिव-स्वरूप कौल साधकों का पूजन कर नम्रता से श्रीगुरु - चरणों का स्पर्श करता हुआ प्रार्थना करे—

श्रीनाथ ! जगतां नाथ ! मन्नाथ ! करुणा-निधे ! परामृत-प्रदानेन, पूरयास्मन्मनोरथम् ।।

'हे नाथ ! हे करुणानिधे ! परमाऽमृत प्रदान से मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए ।'

शिष्य की प्रार्थना सुनकर 'गुरुदेव' वीर साधकों की आज्ञा माँगें—

आज्ञा मे दीयतां कौलाः, प्रत्यक्ष - शिव - रूपिणो । सच्छिष्याय विनीताय, ददामि परमामृतम् ।।

'हे कौल साधकों ! विनीत शिष्य को मैं परमामृत देता हूँ । कृपया अपनी प्रत्यक्ष शिव - रूपिणी आज्ञा प्रदान करें ।

उपस्थित 'कौल' साधक 'गुरुदेव' को निम्न प्रकार अनुमति प्रदान करें—

चक्रेश ! परमेशान ! कौल-पङ्कज-भास्कर ! कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं, देह्यमुष्मै कुलामृतम् ।।

हे चक्रेश्वर ! आप कौल-कमलों को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य के समान परमेश्वर हैं । अपने इस शिष्य को 'कुलामृत' देकर कृतार्थ करिए ।

तब 'गुरुदेव' द्वितीय - तृतीय खण्डों के साथ 'कारण' - पूर्ण 'चषक' (पात्र) 'शिष्य' के कर में प्रदान करें ।

तदनन्तर गुरुदेव जगदम्बिका को विदा कर हृदय-मन्दिर में स्थापित करें और वीर-साधकों के मस्तक पर होम की भस्म का तिलक करें । अन्त में 'चक्रानुष्ठान' की विधि से साधकों के साथ बैठकर पान-भोजनादि क्रिया का सम्पादन करें ।

'पूर्णाभिषेक-संस्कार' का उक्त विधान नव-रात्र, सप्त-रात्र, पञ्च-रात्र अथवा त्रि - रात्र पर्यन्त रना उचित है। असमर्थता हो, तो 'एक - रात्र' का भी विधान है, किन्तु कम-से-कम त्रि-रात्र - पर्यन्त वश्य होना चाहिए।

ध्यान रहे कि शाक्त - क्रम में शाक्त, शैवी दीक्षा में शैव, विष्णु - मन्त्र में वैष्णव, सूर्य मन्त्र में र्योपासक और गणेश जी की दीक्षा-ग्रहण करने में गणेश-भक्त गुरु ही प्रशस्त हैं, किन्तु कौल साधक पाँचों वताओं के मन्त्रों का उपदेश कर सकते हैं। अतः बुद्धिमान् शिष्य को यथा-सम्भव 'कौल-गुरु' से दीक्षा हण करनी चाहिए। लिखा भी है—

शाक्ते शाक्तो गुरुः शस्तः, शैवे शैवो गुरुर्मतः। वैष्णवे वैष्णवः सौरे, सौरो गुरुरुदाहृतः ।।
गाणपे गाणपश्चैव, कौलः सर्वत्र सद्-गुरुः। अतः सर्वात्मना धीमान्, कौलाद् दीक्षां समाचरेत् ।।

यदि 'पशु-गुरु' से मन्त्र ग्रहण किया जाए, तो शिष्य 'पशु-भाव' में ही रहता है। यदि 'वीर-गुरु' से दीक्षित हो, तो शिष्य 'वीर-साधक' बनता है, किन्तु यदि 'कौल-गुरु' से उपदेश ग्रहण करे, तो शिष्य ब्रह्म-वेत्ता (ब्रह्मज्ञ) होता है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है—

पशोर्वक्त्राल्लब्ध-मन्त्रः, पशुरेव न संशयः। वीराल्लब्ध - मनुर्वीरः, कौलाद् भवति ब्रह्म - वित् ।।

'वीर-साधक' की परिभाषा

शाक्ताभिषेकी वीरः स्यात्, पञ्च-तत्त्वानि शोधयेत्। स्वेष्ट-पूजा-विधाने हि, न तु चक्रेश्वरो भवेत् ।।

अर्थात्— जिस साधक का शाक्ताभिषेक हुआ हो, वह 'वीर' कहलाता है। वह अपने घर पर अपने शिष्यों के बीच स्वेष्ट-पूजन-समय में पञ्च-तत्त्वों का संशोधन कर सकता है, किन्तु पूर्णाभिषिक्तों के समक्ष 'चक्रेश्वर' नहीं बन सकता।

'कौल-साधक' की परिभाषा

सर्वं ब्रह्मणि सर्वत्र, ब्रह्मैव परिपश्यति। ज्ञेयः स एव सत् कौलो, जीवन्मुक्तो न संशयः ।।

अर्थात्—जो प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म और ब्रह्म में प्रत्येक वस्तु विद्यमान देखता है (सब जगह केवल ब्रह्म को ही देखता है), उसी को सच्चा 'कौल' समझना चाहिए। वह सदैव 'जीवन्मुक्त' है, इसमें तनिक भी संशय नहीं।

पूर्णाभिषिक्त कौलों की प्रशंसा

पूर्णाभिषेक-सिद्धानां, निर्मलात्मनाम् कौलानां। दर्शनात् स्पर्शनात्, घ्राणात्, द्रव्य-शुद्धिर्विधीयते ।।

अर्थात्—निर्मल आत्मावाले पूर्णाभिषिक्त कौल महात्माओं के दर्शन से, स्पर्श से तथा सूंघने मात्र से द्रव्य-मात्र की शुद्धि हो जाती है। वे जिस वस्तु को एक बार देख लें, या छू लें अथवा सूंघ लें, वह वस्तु सर्वदा को शुद्ध हो जाती है।

दीक्षा

'मुक्ति-साधन' की विवेचना

वैष्णव, शैव, दक्षिण, वीर, सिद्धान्त तथा कौल-मार्ग का वर्णन

चार प्रकार की 'मुक्ति'

मुक्ति के विषय में 'महा-काल-संहिता' में लिखा है—

सालोक्यं चैव सामीप्यं, सारूप्यं च तृतीयकम् । सायुज्यमिति देवेशि ! मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ।।

अर्थात्—१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य तथा ४ सायुज्य—ये चार प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं। जिस देवता की आराधना की गई है, उसके लोक का वास होना 'सालोक्य' मुक्ति है; उसके ही निकट का वास अर्थात् उसका गण बनना 'सामीप्य'-मुक्ति है; 'सारूप्य'-मुक्ति उसका ही जैसा रूप बनकर उसका गण बनता है और 'सायुज्य'-मुक्ति को निर्वाण-मुक्ति भी कहते हैं। इस मुक्ति से साधक ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् ब्रह्म ही बन जाते हैं। अन्य मुक्तियों से साधक पुण्य-क्षय के बाद फिर जन्म लेते हैं। लिखा भी है कि '**क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोके विशन्ति**' परन्तु निर्वाण-मुक्ति को प्राप्त साधक फिर कभी नहीं लौटता। कहा भी है कि 'न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते।' विविध साधकों को कैसी - कैसी मुक्ति मिलती है, इस विषय में 'मेरु-तन्त्र' में लिखा है—

दक्षिणोपासकः कालः, ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात् । देवतायास्तथा पूर्वः, सारूप्यं लभते परम् ।
सामीप्यं चोत्तरो लोके, पश्चिमस्त्वैहिकं फलम् । लाभस्त्यागश्चोपकारो, ह्यधो-मार्गेऽप्युदर्क-युक् ।।

अर्थात् दक्षिणाम्नायात्मक देवता (दक्षिणा-काली आदि, श्रीसूर्य, राम तथा कृष्णादि) के उपासक 'काल' बन जाते हैं अर्थात् 'जीवन्मुक्त' हो जाते हैं। ऊर्ध्वाम्नायात्मक देवता (श्रीविद्या) के उपासक 'सायुज्य' अर्थात् 'निर्वाण - मुक्ति' को प्राप्त कर ब्रह्म बन जाते हैं। पूर्वाम्नायात्मक देवता (लक्ष्मी, सरस्वती, भुवनेश्वरी, विष्णु तथा सदा - शिव आदि) के उपासक 'सारूप्य' - मुक्ति को प्राप्त करते हैं। उत्तराम्नायात्मक देवता (गुह्य-काली आदि) के उपासक 'सामीप्य'-मुक्ति को प्राप्त करते हैं। पश्चिमाम्नायात्मक देवता (कुब्जिका-विद्या आदि) के उपासक 'सालोक्य'-मुक्ति तथा ऐहिक (भोग - विलासादि स्वाभीष्ट) फल को प्राप्त करते हैं।

मुक्ति-साधन के लिए साधक को जिस प्रकार की 'मुक्ति' की अभिलाषा हो, उसी 'आम्नाय' से उपासना करे। छत पर चढ़ने के लिए जैसे 'सोपान' (सीढ़ी) की आवश्यकता होती है, वैसे ही 'उपासना' द्वारा 'मुक्ति' जैसे उच्च पद को पाने के लिए 'उपासना-क्रम' जैसे 'सोपान' का सहारा लेना पड़ता है। कोई मूढ़ बिना 'सोपान' (सीढ़ी) ऊपर चढ़ने को उत्सुक होगा, तो वह अवश्य ही गिर जायगा।

'आगम' के अनुसार नीचे से ऊपर जाने के मार्ग

अपने पूर्व-जन्म के कर्मानुसार जिसको जैसा अधिकार होगा, वैसे ही 'क्रम' से उसे ऊपर पहुँचना होगा। नीचे से ऊपर जाने के मार्ग 'आगम' में निम्न प्रकार बताए हैं—

सर्वेषामुत्तमो वेदो, वेदाद् वैष्णवमुत्तमम् । वैष्णवादुत्तमं शैवं, शैवाद् दक्षिणमुत्तमम् ।
दक्षिणादुत्तम वीरं, वीरात् सिद्धान्तमुत्तमम् । सिद्धान्तादुत्तमं कौलं, कौलात् पर-तरं नहि ।।

अर्थात् 'सबसे उत्तम वेद, वेद से उत्तम वैष्णव, वैष्णव से उत्तम शैव, शैव से उत्तम दक्षिण, दक्षिण से उत्तम वीर, वीर से उत्तम सिद्धान्त तथा सिद्धान्त से उत्तम कौल है।'

उक्त वचन रहस्य-मय है। इसकी 'व्याख्या' यह है कि 'उपनयन' के पूर्व विविध देवताओं के नाम-जप, कीर्तन, तीर्थाटन, दानादि करे। फिर 'उपनयन' द्वारा उत्तम वैदिक मन्त्र 'गायत्री' ग्रहण करे। वैदिक गायत्री के बाद वैष्णव-दीक्षा, उसके बाद शैव-दीक्षा, तदनन्तर शाक्त-दीक्षा, तत्पश्चात् वीर-दीक्षा ग्रहण कर श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर सिद्धान्त का मत ग्रहण करे। उसके बाद 'कौल - दीक्षा' ग्रहण करके 'कौल' बने। यही 'उपासना-क्रम' है।

वैष्णवों के भेद

'उपनयन' के बाद अभीष्ट मन्त्र की 'दीक्षा' लेने का नियम है। 'दीक्षा' गुरु-परम्परा के अनुसार होती है। उदाहरण के लिए वैष्णवों के अनेक भेद हैं। यथा—

१ वैखानस, २ राधा-वल्लभ, ३ गोकुलेश, ४ वृन्दावनी, ५ पञ्च-रात्र, ६ वीर-वैष्णव, ७ रामानन्दी, ८ हरि-व्यासी, ९ निम्बार्क और १० भागवत।

इनमें से किसी एक भेद का आश्रय लेकर 'वैष्णव' उपासना होती है। इन भेदों में किस प्रकार उपासना करते हैं, इस विषय का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) 'वैखानस' वेद से अधिक 'स्मृति' को मानते हैं। किसी - किसी 'परम्परा' में 'गायत्री' तक नहीं जपते। अतः इस मत को द्विज लोग प्रायः ग्रहण नहीं करते। इस मत में शुष्क 'पशु - भाव' से उपासना होती है।

(२) 'राधा-वल्लभ' मत में राधा-कृष्ण के मन्त्र की दीक्षा लेकर दिव्य 'पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(३) 'गोकुलेश' मत में 'गोपाल-सुन्दरी' (सुन्दरी-गोपाल) मन्त्र की दीक्षा लेकर बहिर्वैष्णवाचार का पालन कर अन्त में कौलाचारी बन कर गन्धर्व-क्रम से उपासना करते हैं।

(४) 'वृन्दावनी' मत में द्विभुज वंशी-धर कृष्ण की उपासना दिव्य 'पशु-भाव' से करते हैं।

(५) 'पञ्च-रात्र' मत में शुष्क 'पश्वाचार' से उपासना होती है।

(६) 'वीर वैष्णव' मत में केवल 'विष्णु' को ही मानते हैं। अन्य सब देव - देवियों की निन्दा करते हैं और शुष्क 'पश्वाचार' से उपासना करते हैं।

(७) 'रामानन्दी' मत में राम के 'षडक्षर' या 'एकाक्षर' मन्त्र की दीक्षा ग्रहण कर 'रा' को प्रकृति तथा 'म' को पुरुष मानकर शुष्क 'पाशव-कल्प' से उपासना करते हैं।

(८) 'हरि-व्यासी' मत में 'पाशव'-कल्पोक्त यम-नियम से उपासना करते हैं।

(९) 'निम्बार्क' मत में वेद तथा तन्त्र के अनुसार आर्द्र 'पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(१०) 'भागवत' मत में स्मृति और पुराण के अनुसार उपासना करते हैं।

शैवों के भेद

शैव-उपासना के भेद सात प्रकार के हैं। यथा—

१ शिखी, २ मुण्डी, ३ जटी, ४ द्वि-दण्डी, ५ त्रि-दण्डी, ६ एक-दण्डी तथा ७ वीर-शैव।

इनमें से किसी एक भेद का आश्रय लेकर उपासना होती है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

१ 'शिखी' मत में गृहस्थ द्विज योगाभ्यास से समाधि द्वारा शिव-रूप बननेवाले रुद्राक्ष - धारी होते हैं और विभूति धारण कर शान्त-चित्त प्रसन्नात्मा रहते हैं तथा ब्रह्मचारी रहकर श्रीविन्दु - मालिनी के आश्रय से 'दिव्य पशु-भाव' की उपासना करते हैं।

(२) 'मुण्डी' मत में संन्यासी होते हैं।

(३) 'जटी' मत में कोई तीन जटा, कोई एक जटा, तो कोई वक्त्र - जटा धारण कर नङ्गे रहते हैं। इन्हें 'नागा' कहते हैं।

(४) 'द्वि-दण्डी' मत में 'वचन' तथा 'मन' में दो दण्ड धारण करते हैं। यहाँ 'दण्ड' का अर्थ लाठी नहीं है। इस 'मत' में अन्तर्याग कर आर्द्र 'दिव्य-भाव' से उपासना करते हैं।

(५) 'त्रि-दण्डी' मत में 'काय', 'वचन' तथा 'मन' में तीन दण्ड धारण करते हैं।

(६) 'एक-दण्डी' मत में केवल 'मन' में एक 'दण्ड' धारण करते हैं। इनमें से कोई 'वीर-भाव' से, तो कोई 'दिव्य-पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(७) 'वीर-शैव' मत में केवल 'शिव' की ही उपासना शाम्भवाचार से करते हैं।

शैव तथा वैष्णव उपासना का उक्त परिचय 'शक्ति-सङ्गम' तन्त्र के आधार पर दिया गया है। अधिक एवं प्रामाणिक परिचय तो तत्सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन और उन उपासकों के सत्सङ्ग से ही मिल सकता है। पाशव कल्पवाले तन्त्र-शास्त्र-निन्दक जो तथा-कथित 'वैष्णव' और 'शैव' हैं, उन लोगों को यह बात दिखाने के लिए कि 'शैव' तथा 'वैष्णव' धर्म भी 'तन्त्र' से ही निकले हैं, यह परिचय यहाँ दिया गया है। वास्तव में 'आगम' (तन्त्र) तथा 'निगम' (वेद) में कोई भेद नहीं है।

वैष्णव, शैव और कुल-मार्ग

'वैष्णव' से 'शैव' उत्तम होने के कारण जो वैष्णव हैं, वे 'शैव' तथा 'शाक्त' बन सकते हैं, परन्तु शैव तथा शाक्त लोग 'वैष्णव' नहीं बन सकते। फिर 'शैव' तथा 'शाक्त' में से एक दूसरा बन सकता है, किन्तु 'वाम' दक्षिण नहीं बन सकता, न 'दक्षिण' वाम बन सकता है। हाँ, ये दोनों ही 'कौल' बन सकते हैं (मेरु - तन्त्र) क्योंकि 'वाम - मार्गी' को दक्ष-मार्ग अपनाने से विघ्न होगा और उसे सिद्धि नहीं मिल सकेगी। दक्ष-मार्गी के 'वाम-मार्ग' अपनाने से उसके दोनों ही लोक बिगड़ जाएँगे। अतः अपने **'कुल-मार्ग'** को जानकर उपासना करनी चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'कुल-मार्ग' यानी 'कौलों' का कल्प 'कुल-कल्प' और आचार **'कुलाचार'** के नाम से प्रसिद्ध है। यदि **'कुल'** शब्द के पूर्व 'स्व' या 'निज' शब्द हो अर्थात् 'स्व-कुलाचार' या 'निज-कुलाचार' हो, तो उससे अपने पितृ-परम्परागत आचार समझना चाहिए। अतः **'कुल-धर्म'** का अर्थ है **'कौल-मार्ग'** का विहित धर्म और 'स्व-कुल-धर्म' है ब्राह्मण के लिए ब्रह्म- धर्म, क्षत्रिय के लिए क्षात्र धर्म इत्यादि। ब्राह्मणों का जो 'स्व-कुल-धर्म' है, वह क्षत्रियों के लिए 'अधर्म' है, क्षत्रियों का जो स्व-कुल-धर्म है, वह ब्राह्मणों के लिए 'अधर्म' है इत्यादि, परन्तु जो **'कुल-धर्म'** है, वह सकल सनातनियों के लिए **'धर्म'** है। अतः शङ्कर-वचन है—**'कुल-धर्मः सनातनः'**।

'निर्वाण'-मुक्ति की प्राप्ति और क्रम-पूर्वक उपासना

उपासना के **'क्रम'** को जाननेवाले गुरु से ही **'क्रम-दीक्षा'** लेनी चाहिए। तभी साधना में सिद्धि मिलेगी। **'क्रम-दीक्षा'** के पूर्ण होने पर **'पूर्णाभिषेक'** होगा।

'क्रम-दीक्षा' का क्रम अपनी-अपनी 'गुरु-परम्परा' के भेद से अनेक प्रकार का होता है, जिसके सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा चुका है। अब यहाँ भगवती काली के विषय में कुछ लिखकर इस विषय का उपसंहार किया जाता है।

'काल' = समय, 'ईकार' = शक्ति। अतः **'काली'** काल का विभाजन करनेवाली है। फिर **'क्'** रचना-तत्त्व, **'आ'** अनन्त, **'ल्'** विश्वात्मा तथा **'ई'** सूक्ष्मा है। अतएव 'काली' अति सूक्ष्म पदार्थ चैतन्य-मात्र है। उसे 'शून्य' ही कह सकते हैं। तात्पर्य यह कि जब अकेला 'शून्य' ही रह जाएगा, तब उसका कुछ भी भाव नहीं होगा। जब १ में शून्य लगाया जाएगा, तब वह १० बन जाएगा। इस प्रकार जितने ही शून्य बढ़ेंगे, उतना ही उस १ का भाव बढ़कर अन्त में अनन्त बन जाएगा। अतः 'काली' अति-सूक्ष्मा और अति-स्थूला है। उस 'एक' को ब्रह्म, आत्मा तथा देह कोई भी उपाधि मान सकते हैं। जैसी उपाधि मानते हैं, वैसा ही फल मिलता है। अतएव 'काली' अरूपा है। उसमें नाम की 'उपाधि' लगाने से वह साकार बनकर भक्तों की मनो - कामना पूरी कर देगी। **'दक्षिणा'** उपाधि से 'दक्षिणा - काली', **'गुह्य'** उपाधि से 'गुह्य-काली', **'रक्त'** उपाधि से 'रक्त-काली' (महा-त्रिपुर-सुन्दरी)—इस प्रकार 'उपाधि' के भेद से स्वरूप तथा मन्त्रादि में भेद हो जाता है।

विधि-वत् 'दीक्षा' ग्रहण करने से उक्त रहस्यों का ज्ञान साधक को क्रमशः होता जाता है और 'श्रद्धा' एवं 'विश्वास' के साथ निरन्तर साधना में लगे रहने से अपनी योग्यता और अधिकार के अनुसार वह सभी प्रकार की **'मुक्तियों'** के रहस्यों को भी अनुभव करता जाता है तथा अन्त में **'निर्वाण-मुक्ति'** का अधिकारी बन जाता है।

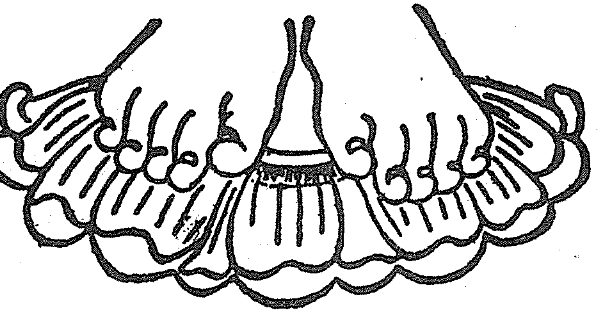

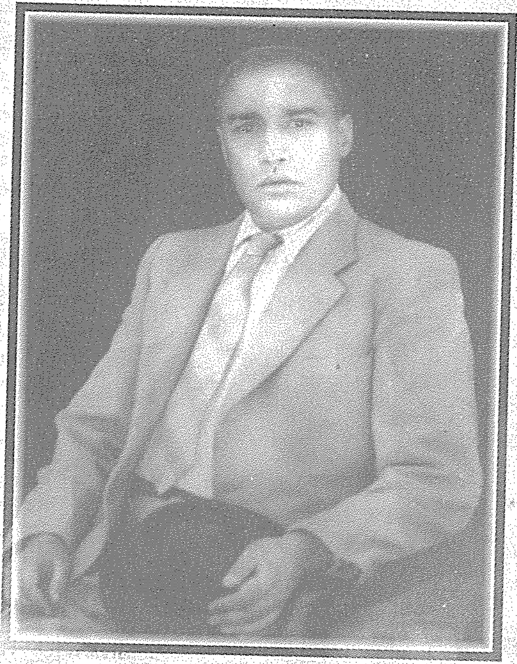

'कौल-शिरोमणि' पं० कालीचरण पन्त

'दीक्षा' का अर्थ, लक्ष्य और
रहस्य बतानेवाले तथा
'चण्डी' के प्रणेता
'कौल-कल्पतरु'
पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल
के परम सहयोगी
पण्डित कालीचरण पन्त जी।
आप अपनी शिक्षा ग्रहण करने के
समय से ही शुक्ल जी से जुड़ गए थे
और फिर अन्त तक आप
'शाक्त-धर्म' के प्रचार-प्रसार हेतु
उनसे जुड़े रहे।

'क्रम-दीक्षा', 'सनातनी दीक्षा-
क्रम' एवं 'दीक्षा अर्थात् मुक्ति-
साधन की विवेचना' जैसे गम्भीर
परम्परा-मय ज्ञान को देनेवाले
तथा सुदूर 'नेपाल' से 'चण्डी'-
पत्रिका को विशेष सहयोग
देनेवाले 'चण्डी' के यशस्वी
लेखक/सम्पादक धनशमशेर जङ्ग
बहादुर राणा जी। आप १९५०
के दशक में 'चण्डी' के प्रवर्त्तक
शुक्ल जी के दर्शनार्थ नेपाल से
प्रयाग भी पधारे थे।

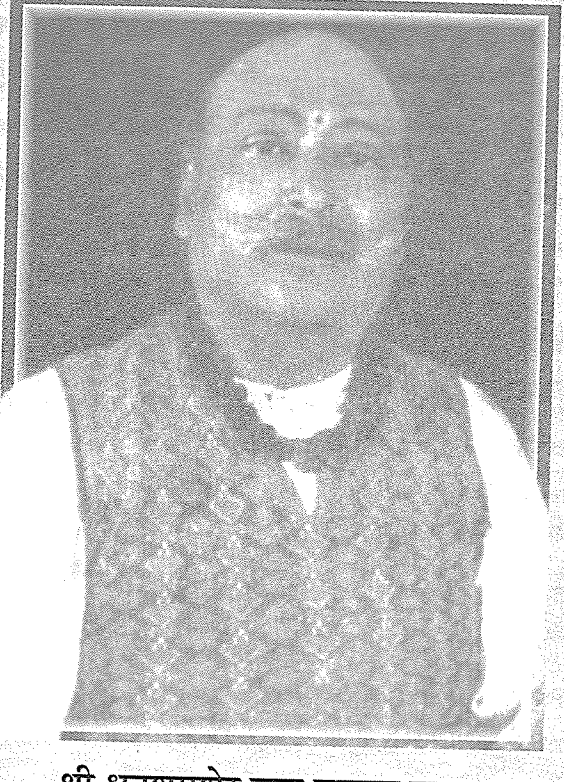

श्री धनशमशेर जङ्ग बहादुर राणा

रजि० सं० ३२९८१/५७

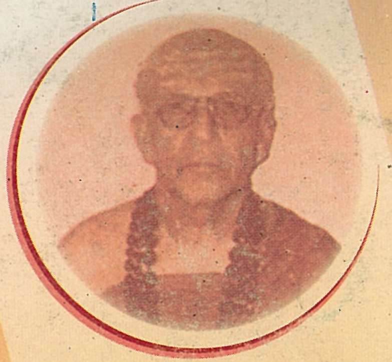

"जिसके द्वारा साधक स्वकीय सम्पूर्ण पापों का नाश कर दिव्य-भाव, परम-सिद्धि तथा परम-ज्ञान को प्राप्त होता है, उसे 'दीक्षा' कहते हैं। ... इससे ही शिष्य की समस्त शारीरिक अशुद्धियाँ लोप को प्राप्त होती हैं और शरीर शुद्ध होने के कारण वह सुर-सपर्या (देव-पूजा) का पूर्णाधिकारी हो जाता है। यही 'दीक्षा' का अर्थ है।"

'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण
दौर्गादत्ति जी शास्त्री

"श्रद्धा तथा विश्वास का अपूर्व सम्मिलन ही 'दीक्षा' का मधुर स्वरूप है। अपूर्व श्रद्धा का आदान तथा पूर्ण विश्वास का प्रदान हो, गुरु शिष्य को 'दीक्षा' द्वारा एकता के सूत्र में अथवा 'अर्ध-नारीश्वर'-स्थिति में पहुँचाता है। 'आगम' का कथन है कि 'आज्ञा-चक्र-भेद' के बाद गुरु-शिष्य-नाता अन्तर्हित हो जाता है। अटूट श्रद्धा से ही गुरु-वरण किया जाता है और गुरु-शिष्य को परम विश्वास (वि+श्वास = श्वास-रहित) के सर्वोच्च शिखर 'समाधि' में स्थित कर देते हैं। इन्हीं आदान-प्रदानों का योग 'दीक्षा' है।"

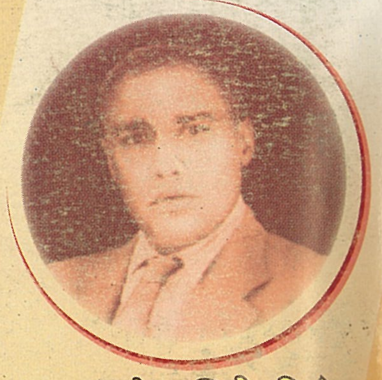

'कौल-शिरोमणि'
पं० कालीचरण पन्त

"विधि-वत् 'दीक्षा' ग्रहण करने से रहस्यों का ज्ञान साधक को क्रमशः होता जाता है और 'श्रद्धा' तथा 'विश्वास' के साथ निरन्तर साधना में लगे रहने से अपनी योग्यता और अधिकार के अनुसार वह सभी प्रकार की 'मुक्तियों' के रहस्यों को अनुभव करता जाता है तथा अन्त में 'निर्वाण-मुक्ति' का अधिकारी बन जाता है।"

श्रीधनशम्शेर
जङ्ग बहादुर राणा

प्रकाशक : श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-६ ☎ ०५३२-२५०२७८३